वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक ३ मार्च २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४

अंक ३

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

फाल्गुन, सम्वत् २०८२

मार्च, २०२६

अनुक्रमणिका

* संसार में रहने वाले साधक का आदर्श : रामकृष्ण परमहंस देव १०२
* रामायण-प्रसंग (स्वामी सुहितानन्द) १०५
* शील का प्रभाव (अरुण चूड़ीवाल) १०८
* रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद : लक्ष्य और कार्यप्रणाली (स्वामी सत्यरूपानन्द) १०९
* (बच्चों का आंगन) शिव का भूत (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) ११४
* मारवाड़ की वीरांगना : अमृता देवी (श्रीमती मिताली सिंह) ११६
* राममयजीविता सीता (स्वामी बलभद्रानन्द) ११७
* (युवा प्रांगण) जिज्ञासा, आन्तरिक निष्ठा और विनम्रता (स्वामी गुणदानन्द) १२१
* भगवान श्रीराम का उच्चतम आदर्श (गौरी शंकर वैश्य विनम्र) १२७
* सत्ता एक, भिन्न अभिधान (राजेश सरकार) १३०
* श्रीरामकृष्ण की अद्भुत दिव्य वाणी (स्वामी पद्माक्षानन्द) १३४
* परम लक्ष्य की ओर (स्वामी गोकुलानन्द) १३९
* (भजन एवं कविता) श्रीरामचरितमानस की कीजै आरती (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') १०७
* होली खेलत भैरवनाथ (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'), * पथ पर हो पथिक न अब निराश (रामबरन सिंह 'करुण')११५, * ठाकुर के संग खेलूँ होली (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), * होली खेलत बाल गोपाल (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'), * ऊषा मधु घट लेकर आया (रामबरन सिंह करुण'), * अपने अपने रंग... (विश्वम्भर व्यग्र) १२५
* त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) १२९
* पुस्तक समीक्षा १४१

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १०१
पुरखों की थाती १०१
सम्पादकीय १०३
रामगीता १११
गीतातत्त्व-चिन्तन १२३
श्रीरामकृष्ण-गीता १२६
साधुओं के पावन प्रसंग १३७
समाचार और सूचनाएँ १४२

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान – रायपुर
२. प्रकाशन की नियतकालिकता – मासिक
३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक – स्वामी योगस्थानन्द
५. सम्पादक – स्वामी प्रपत्त्यानन्द
राष्ट्रीयता – भारतीय
पता – रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी – रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण स्वामी गौतमानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी ज्ञानव्रतानन्द, स्वामी सत्येशानन्द, स्वामी अच्युतेशानन्द, स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, स्वामी शास्त्रज्ञानन्द, स्वामी तत्त्वसारानन्द और स्वामी यादवेन्द्रानन्द।

मैं स्वामी योगस्थानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी योगस्थानन्द

मार्च माह के जयन्ती और त्यौहार

०३	होली, चैतन्य महाप्रभु
०७	स्वामी योगानन्द
२७	रामनवमी
१५,२९	एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित सीता-राम की मूर्ति छत्तीसगढ़ के रायपुर की है। यह मन्दिर वी.आई.पी.रोड रायपुर में अवस्थित है।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	८,००१/-
भारत पैकेजिंग, बीरगाँव, रायपुर, छ.ग.	५,७२३/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति
पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

- क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?
- क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए ! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए । आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ 1. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है ।

✍ 2. एक पुस्तकालय हेतु **मात्र 1500/-** रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में **5 वर्षों तक 'विवेक-ज्योति'** प्रेषित की जायेगी ।

✍ 3. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे । दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा । यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है ।

- आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो । आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं । आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस.एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें ।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, IFSC CODE : CBIN0280804
पता – व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 098271 97535, 0771-2225269, 4036959
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर 1963 ई. में आरम्भ की गई थी । तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है । यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें । आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. 2000/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा । रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-1961, धारा-80जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

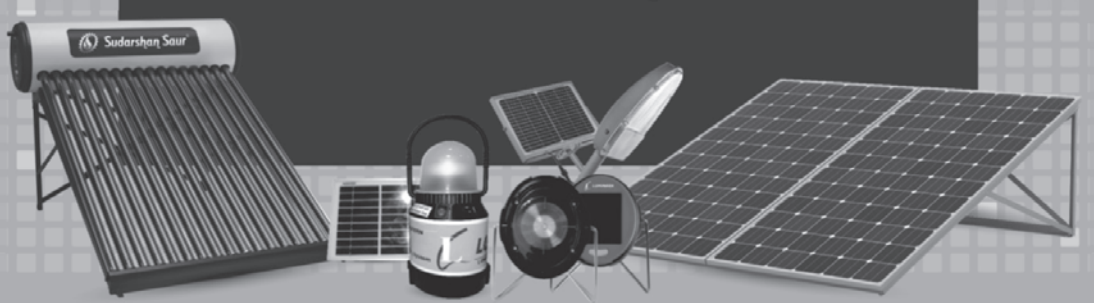

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ मार्च २०२६ अंक ३

श्रीराम-स्तोत्रम्

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्यदावानलाभिधानम् ।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ।।

– जो नील-कमल की-सी आभावाले हैं, संसार-रूप वन के लिये जिनका नाम दावानल के समान है, श्रीपार्वतीजी जिनके आनन्दस्वरूप का हृदय में ध्यान करती हैं, जो जन्म-मरण रूपी संसार से मुक्त करनेवाले हैं और शंकर आदि देवों के आश्रय हैं, उन भगवान श्रीराम को भजता हूँ।

सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं
नराकारदेहं निराकारमीड्यं ।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं
हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ।।

– जो देव-मण्डल के दुख-समूह के एकमात्र नाश के हेतु हैं, जो नररूपधारी, निराकार स्तुति करने योग्य हैं, जो पृथ्वी-भार के नाशक हैं, उन परमेश्वर, परमानन्दरूप पूजनीय भगवान राम को मैं भजता हूँ।

पुरखों की थाती

युध्यन्ते पक्षिपशवः पठन्ति शुकसारिकाः।
दातुं शक्नोति यो वित्तं स शूरः स च पंडितः।।८९५।।

– पशु-पक्षी भी आपस में युद्ध किया करते हैं, तोता और मैना भी आपस में बातें करते हैं, परन्तु जो व्यक्ति धन का दान करने में समर्थ है, वही वीर है और वही ज्ञानी है।

हस्तस्य भूषणं दानं,
सत्यं कण्ठस्य भूषणम्।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं,
भूषणैः किं प्रयोजनम्।।८९६।।

– हाथों की शोभा दान से होती है, गले की शोभा सत्य वाणी से होती है, कानों की शोभा शास्त्र-श्रवण से होती है, ऐसी स्थिति में इन अंगों के लिये आभूषणों की क्या आवश्यकता?

भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम्।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्।।८९७।।

– विद्या अथवा पौरुष नहीं, अपितु भाग्य ही सर्वत्र फल देता है। समुद्र का मन्थन होने पर विष्णुजी को तो लक्ष्मी मिलीं, परन्तु शिवजी को विष प्राप्त हुआ।

संसार में रहने वाले साधक का आदर्श : रामकृष्ण परमहंस देव

एक गृहस्थ भक्त – हमें तो हमेशा दाल-रोटी की चिन्ता करनी पड़ती है, हम साधना कैसे करें?

उत्तर – तुम जिसके लिये श्रम करोगे, जिसका काम करोगे, वही तुम्हें भोजन देगा। जिसने तुम्हें संसार में भेजा है, उसने पहले से ही तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर रखा है। घर, संसार, लड़के-बच्चे, परिवार सब दो दिन के लिये ही है। ताड़ का पेड़ ही सत्य है, फल अनित्य हैं, वे लगते और झड़ जाते हैं।

एक गृहस्थ भक्त – महाराज, परिवार के प्रति कर्तव्य कब तक रहता है?

श्रीरामकृष्ण – जब तक परिवार में सब की गुजर-बसर का प्रबन्ध न हो जाए। अगर तुम्हारे बच्चे अपने पैरों पर खड़े हो जाएँ, तो फिर उनके प्रति तुम्हारा कर्तव्य नहीं रह जाता।

एक गृहस्थ भक्त – महाराज, क्या मुझे अधिक पैसा पाने के लिये प्रयास करना चाहिए?

श्रीरामकृष्ण – हाँ, यदि तुम विवेक-विचार के साथ गृहस्थ-धर्म का पालन करो, तो ऐसे संसार के लिये आवश्यक धन कमा सकते हो, पर ध्यान रहे कि तुम्हारी कमाई ईमानदारी की हो, क्योंकि तुम्हारा उद्देश्य धन कमाना नहीं है, ईश्वर की सेवा करना ही तुम्हारा उद्देश्य है, ईश्वर की सेवा के लिए धन कमाने में कोई दोष नहीं है।

तुम्हें रुपए की ओर इस दृष्टि से देखना चाहिए कि उससे दाल-रोटी मिलती है, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिये मकान मिलता है, ठाकुरजी की पूजा और साधु भक्तों की सेवा होती है। परन्तु धन-संचय करना व्यर्थ है। मधुमक्खियाँ कितने परिश्रम से छत्ता तैयार करती हैं, पर कोई दूसरा ही आदमी आकर उसे तोड़ ले जाता है। स्त्री का पूर्ण रूप से त्याग करना तुम लोगों के लिये नहीं है। परन्तु लड़के-बच्चे हो जाने पर पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहना चाहिए।

तान्त्रिक शव-साधना में साधक को शव की छाती पर बैठकर साधना करनी होती है। उक्त शव-साधना करते समय साधक को पास में ही चना-चबेना और मदिरा लेकर बैठना पड़ता है। साधना के समय बीच में यदि शव जागकर मुँह फाड़े, तो उस समय उसके मुँह में कुछ चना और मदिरा देना पड़ता है। ऐसा करने से वह फिर स्थिर हो जाता है, अन्यथा वह साधक को डराकर साधना में विघ्न उत्पन्न करता है। इसी तरह तुम्हें संसार में रहकर साधना करनी हो, तो पहले संसार की आवश्यक माँगों की पूर्ति का प्रबन्ध कर लो,

अन्यथा संसाररूपी शव तुम्हारी साधना में विघ्न डालेगा।

संसार में धन की आवश्यकता तो है, परन्तु उसके लिये अधिक सोचना नहीं। यदृच्छालाभसन्तुष्ट रहना, अपने आप जो मिल जाए, उसी में सन्तोष करना, सबसे अच्छा भाव है। संचय के लिये अधिक मत सोचो। जिन्होंने अपना मन-प्राण प्रभु को सौंप दिया है, जो उनके भक्त हैं, शरणागत हैं, वे लोग इतना नहीं सोचा करते। उनके पास जैसी आय, वैसा ही व्यय। रुपया एक ओर से आता है, दूसरी ओर से खर्च हो जाता है।

कामिनी-कांचन का पूर्ण त्याग संन्यासी के लिए है। संन्यासी को नारियों का चित्र तक नहीं देखना चाहिए। आचार या इमली की याद आते ही मुँह में पानी आ जाता है, देखने या छूने की तो बात ही क्या! पर तुम जैसे गृहस्थों के लिये इतना कठिन नियम नहीं है, यह केवल संन्यासियों के लिए है। तुम ईश्वर की ओर मन रखकर, अनासक्त भाव से स्त्री के साथ रह सकते हो। पर मन को ईश्वर में लगाने और अनासक्त बनाने के लिये बीच-बीच में निर्जनवास करना चाहिए। ऐसे निर्जन स्थान में जाकर तीन दिन या सम्भव न हो, तो एक ही दिन अकेले रहते हुए व्याकुल होकर ईश्वर को पुकारना चाहिए।

सम्पादकीय

ईश्वरमय-रंग और भक्ति के भंग में मनायें होली

होली भारतीय संस्कृति का प्राचीन और बहुत महत्त्वपूर्ण पर्व है। होली भारत के विभिन्न प्रान्तों और विश्व के विभिन्न देशों में बड़े उत्साह और धूमधाम से मनाई जाती है। भारत के विभिन्न राज्यों और विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूप से होली मनाई जाती है। होली मनाने के सबके अपने-अपने रंग-ढंग हैं। रंग, अबीर, गुलाल से होली खेलते हैं। धूल, राख और मिट्टी से भी होली खेलते हैं। साथ ही ढोल-नगाड़े, झाँझ, मंजीरा, करताल आदि बजाते हुये होली के गीत गाते हैं, नाचते हैं और आनन्द मनाते हैं। उस दिन विभिन्न प्रकार के पूआ-पकवान भी बनाये जाते हैं। होली खाने-गाने-नाचने का, हर्षोल्लास का पर्व है। व्रज की होली विश्वप्रसिद्ध है। आबालवृद्धवनिता सभी अपने-अपने स्तर-स्तर से प्रसन्न रहते हैं और अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त करते हैं।

होली में बहुत से लोकगीतों और लोकधुनों पर युवा थिरकते हैं। उनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और लोक-शृंगारिक और धार्मिक लोकगीत भी गाये जाते हैं। गायक मंडली और श्रोता दोनों ही इन लोकगीतों का आनन्द लेते हैं। वर्तमान में कई क्षेत्रों में युवा अश्लील गीतों को गाकर अभद्रतापूर्वक नृत्य करते हैं, अपशब्दों का उच्चारण करते हैं, जिससे सामाजिक और सांस्कृतिक मर्यादा भंग होती है, एक कुपरम्परा का प्रवर्तन होता है, नारी-समाज लज्जा का अनुभव करता है, बच्चों को अभद्र अश्लील शब्दों का कुसंस्कार पड़ जाता है। अत: होली सोल्लास, सानन्द मनायें, किन्तु समाज और राष्ट्र के नव-निहालों और जनता में कुसंस्कार और कुण्ठा न देकर उन्हें अच्छे गीतों और शिष्ट शब्दों का सुसंस्कार और प्रसन्नता दें।

भक्त की होली इन लौकिक आचार-व्यवहार से थोड़ी भिन्न होती है। भक्त-भगवान का अटूट सम्बन्ध है। भक्त जगत के सब मोह-माया का त्याग कर सदा अपने भगवान के साथ ही रहता है। वह भगवान के साथ ही संवाद-विवाद करता है। उसकी सारी क्रियाएँ और व्यवहार भगवान के साथ ही होते हैं। तब वह होली खेलने कहाँ जाय? वह अपने इष्ट के साथ, अपने प्रभु के साथ ही होली खेलता है। उनके सहचरों के साथ ही होली खेलता है। इस पर लोक में भी बहुत होली के गीत हैं, जो सीता-राम, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती के ऊपर रचित हैं और जन-मानस में इन्हें बड़ी श्रद्धा और हर्षोल्लास के साथ झूम-झूमकर गाया जाता है। भक्त की होली केवल भौतिक जगत के रंग की ही नहीं, अपितु धर्म-अध्यात्म-भाव से संयुक्त रंग की होली होती है और उसमें भक्ति का भंग होता है, जो उन्हें भाव-विभोर कर मादकता प्रदान करता है।

भगवान के लीला-युक्त काव्य और गीतों ने भक्तिकाल के कवियों को साहित्य-जगत में उच्च स्थान प्रदान किया। सन्त सूरदास जी के गोकुल की होली का चित्रण द्रष्टव्य है –

गोकुल सकल गुवालिनी, घर-घर खेलति फाग ।
तिनमैं राधा लाड़िली, जिनको अधिक सुहाग ।।
झुंडनि मिलि गालत चलीं, झूमत नंद दुआर ।
आजु परब हँसि खेलिये, मिलि संग नंद कुमार ।।

यमुनाजी के तट पर गोपियाँ होली खेल रही हैं। किसके साथ? भगवान के साथ। होली खेलते-खेलते उनके मन में कैसे भाव आ रहे हैं? उनके हृदय में हरि के प्रति प्रेम उमड़ रहा है। होली हमारे अन्दर भगवान के प्रति प्रेम को उत्पन्न करे, ऐसी होली हमें खेलना है। देखिये गोपियों की होली का सुन्दर सरस वर्णन –

पिय-प्यारी खेलैं जमुन-तीर ।
भरि केसरि कुमकुम और अबीर ।।
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल।
रँग भीने अरगज वस्त्र माल ।।
हरि संग खेलति हैं सब फाग ।
इहिं मिस करतिं प्रगट गोपी, उर अंतर को अनुराग।।
सारी पहिरि सुरंग, कसि कंचुकि, काजर दे-दे नैन ।

बनि बनि निकसि निकसि भई ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन ।।
ढफ बाँसुरी रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल मृदंग ।
अति आनन्द मनोहर बानी गावत उठति तरंग ।।
एक कोध गोविंद ग्वाल सब, एक कोध व्रजनारि ।
छाड़ि सकुच सब देतिं परस्पर, अपनी भई गारि।।
मिल दस पाँच अलीं चलीं कृष्नहि गहि लावतिं अचकाइ।
भरि अरगजा अबीर कनक घट देति सीस तें नाई।।
छिरकतिं सखी कुमकुमा केसरि, भुरकति बंदन थूरि।
सौभित है तनु साँझ समै घन आए हैं मनु पूरि ।।

सन्त सूरदास जी ने अपनी लेखनी से गोपियों के भाग्य का बड़ा मार्मिक चित्र किया है। ललिता राधा से कहती है कि अरी सखी तुम बड़ी भाग्यशालिनी है। क्योंकि आज तेरे घर भगवान होली खेलने आयेंगे। मुझे यह शुभ सन्देश आंगन में काग के बोलने से मिला है –

तेरे आवैंगे आजु सखी हरि खेलन को फाग री।
सगुन संदेसौं हो सुन्यौ तेरे आंगन बोले काग री ।
मदन मोहन तेरे बस माई, सुनि राधे बड़भाग री।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ सोवैं उठि जाग री ।
चोवा चंदन लै कुमकुम अरु केसरि पैयाँ लाग री ।
सुरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ राधा अचल सुहाग री ।

भक्त की होली भगवान के साथ ईश्वरीय रंग और भक्ति के भंग में होती है। भक्ति का भी एक नशा होता है, जिसमें भक्त संसार के अन्य सभी चीजों को भूलकर उस ईश्वरीय प्रेम-भक्ति का आनन्द लेता है – **मिलि खेलत फाग बढ्यो अनुराग सुरा सनी सुख की रम कै।** कवि रसखान की ये पंक्तियाँ इस भाव को द्योतित करती हैं –

खेलत फाग सुहाग भरी अनुरागहिं लालन कों धरि कै।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन में रंग को भरि कै।
गेरत लाल गुलाल लली मनमोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली रसखानि अली मदमस्त मनों मन कों हरि कै।
मिलि खेलत फाग बढ्यो अनुराग सुरा सनी सुख की रम कै ।
कर कुंकुम ले करि कंजमुखी प्रिय के दृग लावन कौ धमवै।।
रसखानि गुलाल की धूँधर में ब्रजबालन की दुति यों दमकै।
मनौ सावन माँझ ललाई के माँझ चहूँ दिसि तें चपला चमकै।।

हम लोक जीवन में देखते हैं कि लोग भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण और शिवजी के गीतों को गाते और उस पर नाचते हैं। होली के आने पर चारों ओर गीत बजने लगता है – **होली खेले रघुबीरा अवध में होली खेलें रघुबीरा।** राम-सीता के वनवास में होली खेलने के गीत भी जनमानस में प्रचलित हैं – **सीया चलली जंगलवा के ओर होलिया खेले राम लला।** मिथिला की होली का अपना ढंग है। काशीवासियों के सर्वस्व भगवान शिव काशी-विश्वनाथ हैं। अन्य देव-देवी तो वर्ष में एक बार होली खेलते हैं, किन्तु शिवजी प्रतिदिन श्मशान में भस्म की होली खेलते हैं। उनकी होली का चित्रण प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री छन्नू लाल मिश्र जी अपने गायन से करते हैं –

खेले श्मशाने में होली, दिगम्बर खेले श्माशाने में होली ।
भूत-पिशाच बटोरी, दिगम्बर खेले ...।
लखि सुन्दर फागुनी छटा के। मन से रंग गुलाल हटा के।
चिता भष्म भरि झोरी ।। दिगम्बर खेले ...
गोप न गोपी श्याम न राधा। न कोई रोग ना कोई बाधा
ना साजन ना गोरी ।। दिगम्बर खेले ...
नाचत गावत डमरूदारी। छोड़े सर्प करन पिचुकारी।
पीटैं प्रेम थपोरी ।। दिगम्बर खेले ...
भूतनाथ की मंगल होरी। देखि सिहाय बिरीज की छोरी
धन धन नाथ अघोरी ।। दिगम्बर खेले ...

होली के दिन श्रीरामकृष्ण देव के पास जब भक्त लोग आते थे, तो उस दिन स्तोत्र-पाठ, भजन-कीर्तन होता था। भक्तवृन्द गौरांगदेव, श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि के भजनों को गाते थे और नाचते थे। परस्पर अबीर, गुलाल, रंग से खेलते थे। एक बार होली के दिन काशीपुर में श्रीरामकृष्ण के पास भक्तगण पहुँचे। वे लोग रंग से ओतप्रोत होकर शोर मचाते हुये कीर्तन-नर्तन करते हुये श्रीरामकृष्ण के निवास बंगले की परिक्रमा करने लगे। श्रीरामकृष्ण भी भक्तों की प्रसन्नता से आनन्दित हो खिड़की के सामने आकर खड़े हो गये। उनको देखकर भक्त अत्यन्त उत्साहित हो आकाश में अबीर उड़ाने लगे। परिवेश आनन्दमय हो गया। नरेन्द्र ने 'सीतापति रामचन्द्र रघुपति रघुराई' भजन गाया। अन्य कई भजन हुये। होली में मतवाली भक्त-मंडली नाचते-गाते श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम की। अपनी सन्तानों को आनन्दित देख भक्तवत्सला श्रीमाँ सारदा ने बहुत से प्रसाद खाने को दिये। इस प्रकार साक्षात् भगवान के सान्निध्य में भक्तों की होली सम्पन्न हुयी।

भक्तों की होली भगवान के साथ, भगवान की लीलाओं के साथ होती है, ईश्वरमय रंग और भगवद्भक्ति के भंग में होती है और वर्तमान समाज से यही अपेक्षित है। ○○○

रामनवमी-विशेष

रामायण-प्रसंग

स्वामी सुहितानन्द

उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा

अनुवाद – चम्पा भट्टाचार्य, भिलाई

श्रीरामचन्द्र के सम्बन्ध में साधारणत: दो आरोप मुख्य हैं – बाली वध और सीता का वनवास। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में इसका उल्लेख है और गिरिशचन्द्र घोष का दिया हुआ उत्तर भी है। २२ अक्तूबर, १८८५ को उन्होंने कहा – ''यह काम ईश्वर ही कर सकते हैं, मानव नहीं कर सकता।'' कैसे?

साधारणत: अवतार ईश्वरस्वरूप होने पर भी माया के राज्य में हस्तक्षेप नहीं करते। उनके सान्निध्य में आनेवाले लोगों के जीवन में भी वे उनके कर्मफल के अनुसार क्रिया करने देते हैं, यह उनके अवतार लीला की सार्थकता है घटना और व्यक्ति निरपेक्ष। सुग्रीव और बाली परस्पर शत्रु हैं। बाली से सुग्रीव पराजित हो गये हैं। उन्होंने श्रीरामचन्द्र के शरणागत होकर उनके श्रीचरणों में आश्रय लिया। जैसे भी हो शरणागत की रक्षा करनी होगी। भले ही इससे श्रीरामचन्द्र स्वयं ही प्रतिपादित न हों, तो भी करना होगा, श्रीरामचन्द्र का यही मनोभाव था। जैसे माँ सन्तान के लिए प्राण विसर्जित कर देती है। राम को क्या ज्ञात नहीं था कि नैतिक रूप से उनका कार्य उचित नहीं है? फिर भी उन्होंने भक्त के कल्याण हेतु दोषारोपण अपने सिर पर ले लिया।

सीता राम को जितना जानती थीं, निश्चित ही दूसरा कोई इतना नहीं जानता था। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से न देखने पर भी, सांसारिक दृष्टि से सीता राममयजीविता थीं। राम भी सीता के विरह शक्तिहीन हो गए थे। सीता-हरण के बाद उनके विलाप से यह बात समझ में आती है। ऐसी निष्कलंक सीता को राम ने क्यों वनवास दिया? यदि एक चिन्तन-सभा की कल्पना करें, तो एक ओर जनमत और दूसरी ओर एक सच्चरित्र व्यक्ति राम हैं। राजा राम विचारक हैं। व्यक्ति राम सीता को पहचानते हैं, किन्तु विचारक राम तो निरपेक्ष हैं। यदि वर्तमान युग होता, तो और भी घटनाओं का अनुसन्धान हो जाता, लेकिन उन दिनों यह सम्भव नहीं था। यद्यपि विचारक राम को तुरन्त अपनी राय बतानी होगी। पहला विचारक रूप में निरपेक्षता चाहिये और दूसरा अवतार की प्रत्येक लीला जगत-कल्याण के लिए है, भविष्य के लिए है। इसलिए उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर प्रजा-हित को स्थान दिया। यह अस्वाभाविक निर्णय अवतार के द्वारा ही सम्भव है।

अवतार साधारणत: बाह्यदशा, अर्धबाह्यदशा और अन्तर्दशा में रहते हैं। गीता में जिसे भगवान ने क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम अवस्था कहा है। साधक के जीवन में क्षर अवस्था से प्राय: अक्षर तक सम्भव है, पुरुषोत्तम तक पहुँचने पर शरीर नहीं रहता। किन्तु अवतार तीनों अवस्थाओं में आवागमन कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा – वे लोग (अवतार) राजपुत्र हैं, अपने भवन में सर्वत्र जाने का अधिकार रखते हैं। राम, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि चरित्रों का अनुसरण करने के लिये इस तत्त्व को जानना आवश्यक है।

मानव अवतार में सर्वप्रथम हम रामचन्द्र को पाते हैं। राम, सीता, लक्ष्मण आदि उनके व्यक्तिगत जीवन को एक ऐसे स्तर पर ले गए, जिनका अनुकरण जन-साधारण की समझ से परे है। कवि, साधक के लिए कल्पनातीत है। इसलिए

रामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान हमेशा के लिए आदर्श हैं। युग-युग से देश-काल की सीमा को तोड़कर ये सभी चरित्र मानव-सभ्यता की सृष्टि कर रहे हैं। श्रीरामचन्द्र के समय व्यक्तिगत जीवन था मार्ग, कोई धर्म सम्प्रदाय या गोष्ठी नहीं।

हम लोग भी श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, श्रीचैतन्य देव और श्रीरामकृष्ण को अवतार कहते हैं। क्योंकि उनमें ईश्वरीय चैतन्य शक्ति सरलता से विद्यमान है। जैसे हवा, प्रकाश और पानी। रामायण यदि वाल्मीकि की कल्पित रचना है, तो निश्चित ही उन्होंने किसी चरित्र को देखकर कल्पना की होगी। राम, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि ने ऐसे उच्च आदर्श स्थापित किए थे कि वाल्मीकि आदि की दृष्टि में उनका आदर्शरूप जनमानस में विद्यमान था। मन की स्थिति कैसी होने पर इस तरह की लीला की जाती है, इसका उदाहरण हमलोग श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द के चरित्र में पाते हैं।

श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ और स्वामी विवेकानन्द का रूप और उनकी लीला ऐतिहासिक सत्य है। श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक चरित्र मान भी लें, तो रूप, गुण, लीला, शूरता, वीरता में वे जीवित-काल में ही भगवान रूप में पूजित हुए। भगवान की लीला में अन्तर्दशा, अर्धबाह्यदशा, बाह्यदशा रहेगी ही। हरिवशं में, महाभारत में श्रीकृष्ण की बाह्यदशा अर्थात् धर्म की प्रतिष्ठा के लिए वे जो आविर्भूत हुए हैं, उसकी अभिव्यक्ति है, किन्तु उसका अन्वेषण कहाँ हुआ? वृन्दावन में। उन्होंने वृन्दावन में जो ईश्वरीय लीला की, श्रीचैतन्य ने उसी लीला का गहराई से अनुभव किया। श्रीरामकृष्ण ने भी उसी लीला का अनुभव किया और स्वयं उन्होंने एक ही लीला की। भागवतकार ने भी कृष्ण के भाव, महाभाव, महाप्रेम के लक्षण को प्रकट किया। श्रीकृष्ण-जीवन का मूल आधार है ईश्वर के साथ अभिन्नता – चाहे वे कुरुक्षेत्र में रहें, प्रभास तीर्थ में या द्वारका में रहें, यही उनका स्वरूप है, बाकी अवतार-लीला है।

तुलनात्मक रूप से रामचन्द्र के जीवन के भाष्यकार लक्ष्मण, सीता, भरत, विश्वामित्र या वशिष्ठ नहीं हैं। ये सभी रामलीला के सहचर हैं। वाल्मीकि कौन थे? कब थे? राम से पहले या बाद में थे, यह ज्ञात नहीं। यदि रामचरित्र का कोई व्याख्याता है, तो वे हैं वाल्मीकि। आँखों के सामने कोई जीवन नहीं होने पर किसी मानव के द्वारा राम, सीता, लक्ष्मण, भरत की कल्पना करना सम्भव नहीं हैं। इसलिए मानव-बुद्धि हम सबको सोचने के लिए बाध्य करती है कि वाल्मीकि के आविर्भाव से पूर्व राम, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि का लीलामय जीवन समाज ने देखा। शायद उन्हीं सब जीवन के साथ विभिन्न व्यक्तियों, साधकों की कल्पना मिश्रित हो गई, जैसे बाद में कृत्तिवास और तुलसीदास-रामायण, कम्ब-रामायण आदि में। वे चरित्र आदि इतने अधिक सार्वकालिक थे कि उसने गीत, कथानक, साहित्य शिल्प के बीच से देश-काल की सीमा को तोड़ विभिन्न देशों की भाव-भाषा, जीवन-साहित्य में एकाकार हो नवीन सभ्यता की सृष्टि की।

श्रीकृष्ण जब गीता में कहते हैं, तब क्या उनके सामने राम, सीता, लक्ष्मण, भरत उपस्थित थे? उन्होंने क्या बाल्यावस्था से ही रामायण की कहानी सुनी थी?

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भः परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।
तुल्यनिन्दास्तुतिमौनीं सन्तुष्टो येन केन चित्।

गीता का यह श्लोक किस उद्देश्य से है? रामायण में रामचन्द्र की साधना, अनुभूति, महाभाव और प्रेम का संकेत मिलता है, जिसका कहीं-कहीं उल्लेख हुआ है। तब समाज में एक लोकोत्तर जीवन का प्रयोजन था। समाज और सभ्यता ने श्रीकृष्ण, श्रीगौरांग, श्रीरामकृष्ण, इन अति सुन्दर चरित्रों को सामने पाकर, इन्हीं चरित्रों के माध्यम से रामादि चरित्रों के विशुद्ध ईश्वरीय स्वरूप को खोज पाया।

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में हम देखते हैं – जब रामचन्द्र को चरम वैराग्य हुआ, तब दशरथजी ने वशिष्ठ ऋषि को भेजा। वशिष्ठजी ने रामचन्द्र से कहा – 'यदि जगत ईश्वर रहित है, तो तुम उसे त्याग सकते हो।' राम समझ गए कि जिन चीजों से छत बनती है, उसी चुना-मुरम से ही सीढ़ी भी बनती है। आँखें बन्द करने से जो, आँखें खोलने से भी वही। अर्थात् ईश्वर सर्वत्र है। वे स्वयं सच्चिदानन्द हैं और वे ही 'स्वां प्रकृतिम् आश्रित्य' – अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर इस जगत की सृष्टि कर जगत-लीला कर रहे हैं। इसलिए वही ब्रह्म सृष्टि, अवतार, लीला, सब एक साथ देख रहे हैं। श्रीकृष्ण ने भी आत्मयोग से ही लीला की। चैतन्यदेव की भी चिर विद्यमान नवद्वीप-लीला दिव्य लीला है।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं – 'पानी स्थिर रहने पर भी पानी है और हिलने-डुलने से भी पानी है।' अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में रहते हुए उन्होंने कामारपुकुर लीला, दक्षिणेश्वर लीला, काशीपुर लीला की। काशीपुर में श्रीरामकृष्ण रोगग्रस्त थे। उस अवस्था में हरिनाथ ने दिव्य दृष्टि से देखा कि वे असीम आनन्द के सागर हैं। इस बात को जानकर श्रीरामकृष्ण देव ने कहा – 'समझ गया।' श्रीरामचन्द्र को कभी भी अपने सच्चिदानन्द स्वरूप की विस्मृति नहीं हुई। अयोध्या लीला, ताड़ाकासुर-वध, वनवास, सीता-हरण, रावण-वध, सीता का वनवास, सरयू में महाप्रस्थान; ये सभी लीलायें सच्चिदानन्द स्वरूप में हुईं। अवतार की सर्वोच्च आध्यात्मिक अवस्था ही स्वाभाविक अवस्था है, तभी तो पानी के बीच लहरों की तरह लीला होती है।

स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज 'अवतार तत्त्व' के सम्बन्ध में कहते थे, जिसे सेवक के रूप में मैं लिख लेता था – 'अवतार की तीन अवस्थायें होती हैं – ब्रह्म स्वरूप में जीव, अक्षर स्वरूप में समष्टि और पुरुषोत्तम स्वरूप में स्वरूप में रहना। ऐसा नहीं है कि जब एक अवस्था में हैं, तब वे दूसरे में नहीं हैं। उसमें भी स्थान-काल, कार्य-कारण नहीं रहता। वे लोग समरस रहते हैं। हमलोग अपने संस्कार की भिन्नता के कारण उन्हें विभिन्न स्वरूपों में देखते हैं।

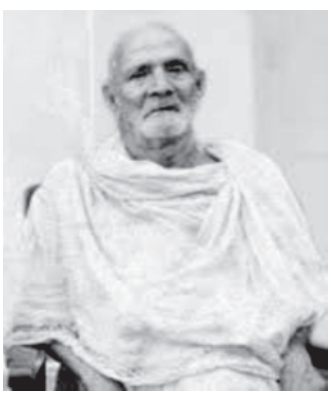
स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज

श्रीमाँ सारदा जिस रूप में श्रीरामकृष्ण को देखती थीं, स्वामी विवेकानन्द उस प्रकार से नहीं देखते थे और स्वामीजी जिस प्रकार से श्रीरामकृष्ण को देखते थे, दूसरे गुरुभाइयों के लिये यह सम्भव नहीं था।

अचानक सूर्योदय होने से जैसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही रामादि चरित्र के उदय होने से मानव सभ्यता इतनी अधिक आलोकित हो जाती है कि आज भी ऐसे एक भी चरित्र की कल्पना नहीं की जा सकी। यही श्रीराम चरित्र की विशेषता है। भगवान श्रीरामचन्द्र की कृपा से हम सबके हृदय में राम-बुद्धि उदित हो, यही प्रार्थना है। ○○○

कविता

श्रीरामचरितमानस की कीजै आरती

आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

श्रीरामचरितमानस की कीजै आरती ।
यह है वेदों-सुर ऋषि-मुनियों की आरती।।

श्री तुलसीदास का नित्य-नवल अवदान है,
इसमें समष्टि का निहित ज्ञान-विज्ञान है,
यह सदा सत्य-शिव-सुन्दर और महान है,
इसकी महिमा दैवी-संस्कृति को धारती,
श्रीरामचरितमानस की कीजै आरती ।।

इसमें है पावन पुण्य-कथा सियराम की,
इसमें है लीला पुरुषोत्तम सुखधाम की,
इसमें है जगमग ज्योति जगी हरिनाम की,
इसमें है झाँकी मानवीय गुण-ग्राम की,
आसुरी शक्ति-सम्पत्ति इसी से हारती,
श्रीरामचरितमानस की कीजै आरती।।

इसका गौरव और गरिमा अमित-अपार है,
यह मानवकुल के सुजनों का उरहार है,
यह श्रेय-प्रेय का, योग-क्षेत्र का द्वार है,
सारे लोकों में इसकी जय-जयकार है,
यह दिव्य कथा भवसागर से उद्धारती,
श्रीरामचरितमानस की कीजै आरती ।।

जे करैं पाठ-पारायण भक्ति जगावहीं,
जे प्रेम सहित परमार्थ-कथा यह गावहीं,
जे करैं आरती-वन्दन ध्यान लगावहीं,
कह भानुदत्त ते चार पदारथ पावहीं,
यह 'मानस–गंगा' सभी जनों को तारती ।
श्रीरामचरितमानस की कीजै आरती ।।

शील का प्रभाव

अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

महाभारत के शान्तिपर्व के १४२वें अध्याय में शरशय्याशायी पितामह भीष्म और महाराज युधिष्ठिर का संवाद है। इस प्रश्नोत्तर-शृंखला में युधिष्ठिर ने भीष्म से जिज्ञासा की – किस प्रकार शील की उपलब्धि होती है? इस प्रश्न के उत्तर में गंगानन्दन कहते हैं – राजसूय यज्ञ के समय में तुम्हारी अद्‌भुत श्री-सम्पत्ति समृद्धि देखकर संतप्त हुए दुर्योधन ने कौरव सभा में धृतराष्ट्र से अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की थी – 'पाण्डवों के उस कुबेर के समान शुभ एवं विशाल ऐश्वर्य का अवलोकन करके निरन्तर शोक में डूबा जा रहा हूँ।' उत्तर में धृतराष्ट्र ने कहा था – युधिष्ठिर के पास जैसी सम्पत्ति है, वैसी या उससे भी बढ़कर राजलक्ष्मी को यदि तुम पाना चाहते हो, तो शीलवान बनो।

राजा मान्धाता ने एक ही दिन में, जनमेजय ने तीन ही दिनों में और नाभाग ने सात दिनों में ही इस पृथ्वी का राज्य प्राप्त किया था। ये सभी राजा शीलवान् और दयालु थे।

दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से पूछा था – शील कैसे प्राप्त होता है? यह मैं सुनना चाहता हूँ। पितामह कहते हैं कि दुर्योधन के उत्तर में धृतराष्ट्र ने नारदजी द्वारा वर्णित प्राचीन इतिहास का उद्धरण दिया कि शीलहीन प्रह्लाद किस प्रकार पूर्णत: श्रीहीन हो गए। धृतराष्ट्र ने वर्णन किया – एक समय इन्द्र बृहस्पति एवं शुक्राचार्य के पास सर्वोत्तम श्रेय-प्राप्ति की जिज्ञासा लेकर गये थे। शुक्राचार्य ने इन्द्र को इस हेतु प्रह्लाद के पास भेजा। इन्द्र ब्राह्मण वेष में राजा प्रह्लाद के पास गये। ब्राह्मण वेशधारी ने प्रह्लाद से कहा – राजन्! यदि आप प्रसन्न हैं और मेरा प्रिय करना चाहते हैं, तो मुझे आपका ही शील प्राप्त करने की इच्छा है। यही मेरा वर है। 'एवमस्तु' कहकर प्रह्लाद ने वह वर दे दिया। वर देने के पश्चात् प्रह्लाद को बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे चिन्ता कर ही रहे थे कि उनके शरीर से परम कान्तिमान एक छायामय तेज मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ। उसने उनके शरीर को त्याग दिया एवं कहा – मैं शील हूँ। तुमने मुझे त्याग दिया है, इसलिए मैं जा रहा हूँ। उस तेज के चले जाने पर प्रह्लाद के शरीर से दूसरा वैसा ही तेज प्रकट हुआ। प्रह्लाद ने पूछा – आप कौन हैं? उसने उत्तर दिया। मुझे धर्म समझो। दैत्यराज! जहाँ शील होता है, वहीं मैं रहता हूँ। तदनन्तर महात्मा प्रह्लाद के शरीर से एक तीसरा पुरुष प्रकट हुआ। 'आप कौन हैं?' इस प्रश्न पर उस महातेजस्वी ने उन्हें उत्तर दिया – असुरेन्द्र! मुझे सत्य समझो। मैं अब धर्म के पीछे-पीछे जाऊँगा। सत्य के चले जाने पर प्रह्लाद के शरीर से एक अन्य महापुरुष प्रकट हुए। परिचय पूछने पर उस महाबली ने उत्तर दिया – प्रह्लाद! मुझे सदाचार समझो। जहाँ सत्य होता है, वहीं मैं रहता हूँ। उसके चले जाने पर प्रह्लाद के शरीर से महान शब्द करता हुआ पुन: एक पुरुष प्रकट हुआ। उसने पूछने पर बताया – 'मुझे बल समझो। जहाँ सदाचार होता है, वहीं मेरा भी स्थान है। तत्पश्चात् प्रह्लाद के शरीर से एक प्रभामयी देवी प्रकट हुयी। दैत्यराज ने उससे पूछा – आप कौन हैं? वह बोली – मैं लक्ष्मी हूँ। सत्य-पराक्रमी वीर! मैं स्वयं ही आकर तुम्हारे शरीर में निवास करती थी। परन्तु अब मैं चली जाऊँगी, क्योंकि मैं बल की अनुगामिनी हूँ। लक्ष्मी ने कहा –

धर्म: सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाप्यहम्।
शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशय:।।

– धर्म, सत्य, सदाचार, बल और मैं (लक्ष्मी), ये सभी सदा शील के आधार पर ही रहते हैं। शील ही इन सबका मूल है। इसमें संशय नहीं है।

इस कथा को सुनकर दुर्योधन ने पुन: अपने पिता से कहा – मैं शील का तत्त्व जानना चाहता हूँ। शील जिस प्रकार से प्राप्त हो सके, वह उपाय भी मुझे बताइये।

धृतराष्ट्र उत्तर देते हैं – मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी प्राणी से द्रोह न करना, सब पर दया करना और यथाशक्ति दान देना, यह शील कहलाता है। अपना जो कर्म दूसरों के लिए हितकर न हो अथवा जिसे करने में संकोच का अनुभव होता हो, उसे किसी प्रकार नहीं करना चाहिए। जो कर्म करने से मनुष्य की प्रशंसा हो, उसे ही करना चाहिए। कुरुश्रेष्ठ! यह थोड़े में शील का स्वरूप है।

धृतराष्ट्र-दुर्योधन संवाद का उद्धरण देकर पितामह राजा युधिष्ठिर से कहते हैं – बेटा! यदि तुम सम्पत्ति प्राप्त करना चाहो, तो इस उपदेश को यथार्थ रूप से समझकर शीलवान बनो। ○○○

रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद : लक्ष्य और कार्यप्रणाली

स्वामी सत्यरूपानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे। उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण व्याख्यान २२ फरवरी, १९९७ को भावप्रचार परिषद की सभा में दिया था।)

(गतांक से आगे)

कहीं भी आप देखिए, जहाँ सफलता है, उस सफलता के पीछे एक या एकाधिक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके जीवन में यह 'आत्मनो मोक्षार्थं जगत् हिताय च' का लक्ष्य त्याग और सेवा के रूप में उत्पन्न हुआ। उसके बिना कभी सफलता नहीं मिल सकती। स्वामीजी ने कहा कि चालाकी से महान कार्य नहीं होता, विराट काम भले हो जाय। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम से दस गुनी बड़ी संस्थाएँ कोई चालाकी से, धोखेबाजी से, राजनीति के चक्करों से करोड़ों रुपये खर्च करके बना सकते हैं, पर उस संस्था और उससे जुड़े व्यक्ति से किसी को जीवन में प्रेरणा नहीं मिल सकती। तो बड़ा काम तो हो जायेगा, पर महान कार्य नहीं हो सकता है। महान कार्य की पहचान यह नहीं है कि कितना उसका विस्तार है, कितने लड़के पढ़ते हैं, कितने आश्रम हैं, कितने अस्पताल हैं, कितने छात्रावास हैं। ये उसकी पहचान नहीं है।

महान कार्य की क्या पहचान है? इसकी पहचान यह है कि जो भी आपके सम्पर्क में आये या जो व्यक्ति उसके सम्पर्क में आये, उसके जीवन में महानता जागती है। उसके जीवन में त्याग, तपस्या, सच्चरित्र होने की प्रेरणा जागती है। उसकी पहचान यह है कि कितने लोग व्यक्तिगत जीवन में इस बात के लिए प्रेरित हुए हैं कि मुझे भी कुछ त्याग करना चाहिए, मुझे भी पवित्र जीवन बिताना चाहिए। भगवान ने मुझको जो दो पैसा दिया है, उसमें से आधा पैसा मैं सेवा में लाऊँ। भगवान ने मुझे चार रोटी दी है, तो आधी रोटी दूसरों को दूँ। यह प्रेरणा क्या हमारे सामने है?

आप सब रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद के हमारे सहयोगी हैं। अपने आपको अलग मत समझिये। भावप्रचार परिषद की दस सूत्रीय मार्गदर्शिका है। ये हमारे मार्गदर्शन के लिये हैं। लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। बिना त्यागी व्यक्तित्व के खोखले प्रचार-प्रसार के द्वारा कभी कोई महान कार्य नहीं होगा, वह विशाल हो जायेगा। इस विशालता का परिणाम यह होगा कि दोष भी विशाल होगा। जैसाकि आजकल के स्कूल-कालेजों में गड़बड़ियाँ देखने को मिल रही हैं। क्या कारण है कि लोग इतने दुष्ट हैं, बदमाश हैं? उसके मूल में यह बात है कि उनको प्रेरणा स्रोत नहीं मिल रहा है। न तो शिक्षक, न माता-पिता और न विद्यार्थी। इसलिये हमारे प्रत्येक केन्द्र को, जहाँ रामकृष्ण मिशन, माँ सारदा, विवेकानन्द का नाम है, उसे समाज प्रेरणा-स्रोत के रूप में आना चाहिये। यह संस्था ऐसी हो कि जब मनुष्य को कष्ट हो, दुख हो, जब व्यक्ति को ऐसा लगे कि मन में बहुत अशान्ति है और वह सोचे कि मुझे कहाँ शान्ति मिलेगी, तो आपके नगर में तुरन्त उसको यह लगना चाहिए कि यह एक ऐसा स्थान है, जहाँ अगर मैं जाऊँगा, तो मुझे शान्ति मिलेगी। इस नगर में अमुक एक व्यक्ति हैं, जिनके पास जायेंगे, तो हमको अवश्य शान्ति मिलेगी।

यह आवश्यक नहीं है कि संन्यासी लोग ही सब कुछ करें। आपमें से एक-दो लोग यहाँ हैं, दो-चार लोग उनका नाम जानते हैं। ब्रह्मलीन आत्मानन्द जी महाराज के पहले यहाँ रामकृष्ण सेवा समिति बनी थी। उस रामकृष्ण सेवा समिति के माध्यम से आत्मानन्द जी महाराज से मैं परिचित हुआ, जब वे बह्मचारी थे। मेरा परिचय उस रामकृष्ण सेवा समिति के आशु विश्वास से हुआ। उन्होंने यहाँ भावधारा चलायी थी। वे गृहस्थ थे, पर दिन-रात इसी में लगे रहते थे। ऐसे

उदाहरण हैं। अब प्रसंगानुसार कुछ व्यक्ति की बात करता हूँ।

एक ऐसा युवक उनके पास आया। उस समय साधन नहीं थे और उसकी बड़ी इच्छा थी कि साहित्य पढ़ना चाहिए कि इसमें क्या लिखा है। दूसरे मित्र के सम्पर्क में आकर इच्छा हुई कि इसको पढ़ें, तो थोड़ा-बहुत अंग्रेजी, हिन्दी में पढ़ा। फिर मित्र ने कहा – अरे रामकृष्ण परमहंस को जानना चाहते हो, तो मूल बंगला में उनके उपदेश पढ़ो, अधिक ठीक से जानोगे। वह युवक आशुतोष विश्वास, जिन्हें आशु बाबूजी कहते थे, वहाँ गया। उन्होंने बंगला पढ़ना सिखाया। बहुत थोड़ी उनकी पूँजी थी। उन्होंने सारी पूँजी लगाकर विवेकानन्द साहित्य बेचने की दुकान खोलकर रख दी। तथाकथित दुकान थी, पर उसमें हानि ही होती थी। उन्होंने उस युवक से पूछा, अच्छा श्याम को जानता है? कैसे आया है? पिता के बड़े भाई को बंगला में 'जेठू' कहते हैं। उस युवक ने कहा – जेठू, ऐसा है कि मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं मूल बंगला में श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, श्रीवचनामृत और स्वामीजी की पुस्तकें अंग्रेजी में पढ़ूँ, पर मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं पुस्तक क्रय नहीं कर सकता। उन्होंने कहा – किसने तुझे कहा कि पैसे नहीं होने से पुस्तक नहीं मिलती है? फिर उन्होंने एक शब्द नहीं पूछा और वे सभी पुस्तकें उस युवक को दे दीं। उस युवक ने वे पुस्तकें पढ़ीं और उसका जीवन बदल गया।

देखिए, वे गृहस्थ थे। उनके पत्नी-बच्चे सब थे। पर उनका सारा जीवन रामकृष्णमय था और उसी में उनकी समाप्ति हुई। बिलासपुर का आश्रम अब तो बड़ा है। पहले किराये के मकान में रहा करते थे। बिचारे बूढ़े हो गये थे। अपने हाथ से खाना बनाते थे। दो-दो रुपये के चन्दे के लिये घूमते थे। लोग हँसी उड़ाते थे। पर उस हँसी का परिणाम आज रायपुर आश्रम और बिलासपुर आश्रम है। देखिए, आप लोग गृहस्थ हैं और हम लोग संन्यासी हैं, किन्तु त्याग और सेवा का भेद गृहस्थ और संन्यासी में नहीं है। इस भेद को श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द ने मिटा दिया है। यदि तुमने जीवन में त्याग और सेवा स्वीकार किया है, तो तुम ठाकुर के भक्त हो, चाहे तुम संन्यासी हो या गृहस्थ। तो ये दो बातें हमारे जीवन में हैं क्या?

हमारे इन केन्द्रों में, जहाँ से आप आये हैं, आप वहाँ के कार्यकर्ता हैं। जो भी व्यक्ति आपके पास आये, तो उसको जीवन में इस बात की प्रेरणा मिले। अगर हमारे पास आने के बाद उसको ऐसा लगने लगे कि मैं भी ऐसी दुकान चलाऊँ, जिसमें काफी लाभ हो, किसी तरह इससे समझौता कर लूँ और इसके कोने में एक स्थान मिल जाये, तो उस व्यक्ति का दोष नहीं है, दोष हमारा है।

श्रीरामकृष्ण के दो शिष्य थे – स्वामी प्रेमानन्द जी और स्वामी ब्रह्मानन्द जी। उस समय के बंगाल में, कलकत्ता में हमारे बहुत बड़े भक्त थे भट्टाचार्य महाशय। उनको पत्नी-शोक

बेलूड़ मठ

हुआ। उनके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी। वे बेलूड़ मठ में बहुत आते-जाते थे। निकट का सम्पर्क था। पत्नी-वियोग के बाद मन बड़ा खराब था। वे एक बार मठ में आये और उन्होंने मठ के मैनेजर स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज, जिन्हें बाबूराम महाराज कहते थे, उनसे कहा – महाराज, मेरी इतनी सम्पत्ति है। मैं वह मठ को देना चाहता हूँ। बाबूराम महाराज प्रसन्न हुए – वाह, बहुत अच्छा है। मठ में उस समय अभाव था। भिक्षा से काम चलता था। बाबूराम महाराज ने कहा –मैं ब्रह्मानन्द स्वामी जी 'राजा' को बताता हूँ। बाबूराम महाराज ने उत्साह से राजा महाराज के पास जाकर कहा – राजा, अमुक भट्टाचार्य आये हैं। वे मठ को अपनी सम्पत्ति और रुपये का दान करना चाहते हैं। इससे मठ की बड़ी सुविधा हो जायेगी। तब ब्रह्मानन्द महाराज जी ने कहा – बाबूराम दादा, हम साधुओं का संग करके उस गृहस्थ के मन में इतना त्याग, वैराग्य आ गया कि वह अपनी सारी सम्पत्ति हमको देने के लिए आ गया और हम लोग साधु होकर मन में ऐसा लोभ आ गया कि हम उसके रुपये ले लें? बाबूराम महाराज ने कहा – अरे, तुमने ठीक कहा। तब उन्होंने भट्टाचार्यजी से कहा कि नहीं, आपकी सम्पत्ति हम नहीं लेंगे। ये लोग ब्रह्मज्ञ पुरुष थे। ये लोग देखते थे। भट्टाचार्यजी अपनी सम्पत्ति देना चाहते थे, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। यह हम लोगों की परम्परा है। ○○○

रामगीता (६/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

एक बार प्रभु सुख आसीना।
लछिमन बचन कहे छलहीना।।
सुर नर मुनि सचराचर साईं।
मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।।
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन रज सेवा।।
कहहु ग्यान बिराग अरु माया।
कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।।
३/१३/५-८
ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।।
३/१४/०

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज और समुपस्थित संन्यासी वृन्द के चरणों में मेरा शत नमन है और आप सब समुपस्थित श्रद्धालु, जिज्ञासु भक्त श्रोताओं का, देवियों का स्वागत, अभिनन्दन। आइए, इस बार आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन की जो सर्वोत्कृष्ट परिणति होनी चाहिए और इसमें जो बाधक कारण हैं, उन कारणों का निवारण कैसे हो, इसका बड़ा ही विलक्षण संकेत आपको मानस के माध्यम से मिल सकता है। परम श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने कल की कथा का सार संक्षेप इतने सरल और गम्भीर, दोनों ही रूपों में प्रस्तुत किया कि मुझे विश्वास है कि वह आपके सुनने में अत्यन्त उपयोगी और सहायक सिद्ध होगा।

श्रीलक्ष्मण दण्डकारण्य के एकान्त क्षणों में भगवान श्रीराम से निवेदन करते हैं और उन्होंने जो प्रश्न किए, वे सांसारिक व्यवहार के सम्बन्ध में नहीं थे। वे प्रभु से प्रश्न करते हैं कि ज्ञान क्या है, वैराग्य क्या है, माया किसे कहते हैं और भक्ति का स्वरूप क्या है? वे भगवान से निवेदन करते हैं कि आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए, जिससे शोक, मोह, भ्रम दूर हो जाये और आपके चरणों में रति हो –

जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।

भगवान श्रीराम लक्ष्मणजी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुमने जो प्रश्न किये उसका उत्तर मैं संक्षेप में ही दूँगा, पर मैं यह आग्रह अवश्य करूँगा कि तुम मन, बुद्धि और चित्त लगाकर उसे सुनना –

सुनहु तात मति मन चित लाई।

उसके पीछे तात्पर्य यह है – ये तीन शब्द हैं, शोक, मोह और भ्रम। यह जो अन्त:करण चतुष्टय है, उसमें मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारों की संज्ञा है। इन चारों का समुच्चय है अन्त:करण चतुष्टय। भगवान राम ने इसमें से अहंकार को अलग कर देने के लिए कहा। मन, बुद्धि, और चित्त को लगाकर सुनो। इसका सांकेतिक अभिप्राय था कि अहंकार को छोड़कर सुनो, यह समझ में आनेवाली बात है।

अगर कोई व्यक्ति अहंकार लेकर सुनने बैठ जाये, तो उसका परिणाम क्या होगा? अहंकार की यह प्रकृति है, स्वभाव है कि वह दूसरों की तुलना में अपने को श्रेष्ठ मानता है। मान लीजिए कोई श्रोता अपने को महान विद्वान, ज्ञानवान, श्रेष्ठ मानकर श्रवण करने बैठ भी जाये, तो उसके हृदय में तर्क-वितर्क का ही उदय होता है। जब अहंकार छोड़कर श्रोता सुनने बैठता है, तब उसका मन एकाग्र होता है। आप नीचे बैठते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं आप में वक्ता की अपेक्षा योग्यता कम है। आप उससे विशेष योग्य हो सकते है, होते हैं, लेकिन फिर भी जब श्रोता के रूप में नीचे बैठने का निर्णय करते हैं, तो वह मानो अहंकार-त्याग

का एक प्रतीक है कि जिससे आप सुनना चाहते हैं, उनके प्रति आपके मन में आदर है। इसलिए भगवान राम लक्ष्मणजी से कहते हैं कि तुम मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनो। उसका एक सूक्ष्म सूत्र यह है कि ये जो तीनों शोक, मोह और भ्रम हैं, इनका केन्द्र कौन सा है। शोक मन में होता है, मोह चित्त में होता है और भ्रम बुद्धि में। आप रामायण में संकेत के रूप में इसे पायेंगे। इसका आप अनुभव भी कर सकते हैं कि जब भी शोक का, दुख का अनुभव आप करते हैं, तो आपको मन में ही दुख का अनुभव होता है। तो शोक का सम्बन्ध मन से है। मोह जो है, वह चित्त में होता है। इसीलिए मोह का विनाश सबसे अधिक कठिन है। क्योंकि अन्त:करण चतुष्टय में यह जो चित्त है, यह सबसे अद्‌भुत है। अभी श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने पाश्चात्य दर्शन के उन शब्दों की ओर संकेत किया, जिसमें चेतना को उन्होंने दो नामों से विभाजित किया। एक बहिरंग चेतना और दूसरी अवचेतना। इसकी गहराई से हमारे दर्शन ने, हमारे ऋषि-मुनियों ने विश्लेषण और अनुभव किया। किन्तु प्रश्न वही कि व्यक्ति समझकर भी क्यों नहीं उसे जीवन में उतारता? उसका तात्पर्य यह है कि मन की अपेक्षा बुद्धि अन्तरंग है और बुद्धि की अपेक्षा भी चित्त और भी अधिक अन्तरंग है। जिसे वे अवचेतन मन कहते हैं, वे एक सीमित स्थिति को प्रस्तुत करते हैं, पर आप अगर जिज्ञासु हों और समझना चाहें, तो इस चित्त की व्याख्या को पतंजलि योगदर्शन के द्वारा भी समझ सकते हैं। वह थोड़ा जटिल है, सूक्ष्म है। पर जब महर्षि पतंजलि से यह प्रश्न किया गया कि योग का तात्पर्य क्या है? योग माने क्या होता है? तो उन्होंने प्रारम्भ में यही कहा – **योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः।** योग का तात्पर्य है चित्त की वृत्तियों का निरोध। इसका क्या अर्थ है? योग का उद्देश्य है, मन और बुद्धि के पीछे रहनेवाले चित्त का निरोध करना, जिस चित्त में इसी जन्म का नहीं, पूर्व-पूर्व जन्मों के संस्कार भी संग्रहित हैं। आजकल मनोचिकित्सा का एक प्रचार हुआ है। मनोचिकित्सकों ने, डॉक्टरों ने भी यह स्वीकार किया है कि बहुत से रोगों का कारण मानसिक विकृति होती है। जब मनोरोगी उस डॉक्टर के पास जाता है, तो वे रोगी से आग्रह करते हैं कि आप अपने पुराने संस्मरण सुनाइए। बाल्यावस्था में क्या कोई ऐसी घटना हुई, जिसकी आपको बार-बार याद आती है? उसके पश्चात् की अवस्थाओं में भी कौन सी ऐसी बात हुई, जिससे आप इतने प्रभावित हुए? उनकी धारणा ऐसी है कि बाल्यावस्था में बहुत सी बातें ऐसी हुईं, जो रोग का कारण बनी। जैसे किसी माँ ने बच्चे को डराने के लिए भूत-प्रेत का नाम ले लिया, तो बच्चा उस समय बुद्धि से तो समझता नहीं कि भूत-प्रेत क्या होता है, पर उसके अन्त:करण में भूत-प्रेत और भय का जो संस्कार है, वह पैठ जाता है और आगे के जीवन में वह किसी न किसी रूप में प्रगट होता है। उसका अभिप्राय यह है कि आधुनिक मनोचिकित्सक यह मानता है कि बाल्यावस्था में हमलोग अनेक बातें बच्चों से करते हुए इस बात का ध्यान नहीं रखते कि इसका दूरगामी परिणाम क्या होगा? वह जितना प्रभावी होगा, उतना आगे चलकर जीवन को प्रभावित करेगा।

पर जो हमारा दर्शन है, वह इससे और भी आगे जाता है। वह कहता है कि नहीं, नहीं, बाल्यावस्था का जो प्रभाव पड़ा, वह तो जीवन में आगे चलकर कई रूपों में सामने आता ही है, पर जो पुनर्जन्म का सिद्धान्त है, वह तो पाश्चात्य दर्शन में, धर्मों में नहीं है। इसलिए जब वे कहते हैं कि व्यक्ति के अनेक जन्म हुए हैं और भविष्य में होंगे, तो यह मानते हैं कि बाल्यावस्था में ही नहीं, पूर्व-पूर्व जन्मों में भी बहुत घटनाएँ ऐसी हुई होंगी, जो उसके चित्त में संस्कार के रूप में संग्रहित हैं। आपने कई बार देख होगा कि किसी व्यक्ति को देखकर बहुत सोचे-समझे बिना भी स्नेह की अनुभूति होती है, अपनत्व सा लगता है। कई ऐसे भी व्यक्ति आपको मिल जाते हैं, जिनसे आपका कोई झगड़ा नहीं है, पर उस व्यक्ति को देखकर ऐसे लगता है कि कैसा यह व्यक्ति है, एक घृणा की भावना उत्पन्न हो जाती है। उसका तात्पर्य क्या हुआ? हो सकता है कि पूर्व जन्म में वह आपका कोई सुहृद रहा हो, स्नेही रहा हो और आज वह आपके ध्यान में नहीं है पर उसको देखकर हृदय में एक प्रकार का अपनत्व का उदय होता है और इसी तरह से कोई ऐसा व्यक्ति हो सकता है कि जिससे आपका पूर्व जन्म में विरोध रहा हो, अब आप उसको न जानते हैं, न पहचानते हैं, न वह आपको पहचानता है, पर चित्त में वह संस्कार होने के कारण उसके देखते ही मन में एक प्रकार का उद्वेग उत्पन्न होता है। सनातन धर्म का चिन्तन है कि चित्त में अनगिनत जन्मों के संस्कार संग्रहित हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रसंग है कि जिस समय दुष्यन्त ने शकुन्तला को देखा, तो उस समय उनके सम्मोहित होने की बात आती है। वह बड़ा

प्रसिद्ध श्लोक है, उसमें वे कहते हैं –

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।।

व्यक्ति को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, सुखी है। इसका अभिप्राय है कि अगर कोई भूखा है और उसे भोजन स्वादिष्ट लगे, तो वह भोजन का स्वाद है कि भूख का स्वाद है, यह कहना कठिन है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति भूखा नहीं है, फिर भी भोजन स्वादिष्ट लग रहा है, तो अवश्य भोजन स्वादिष्ट है। उन्होंने कहा कि हमें कोई कष्ट नहीं है, हम शान्त हैं और उस समय भी हमें आकर्षण हो रहा है, तो कहते हैं – **जननान्तर सौहृदानि।** इसका अभिप्राय है कि यह पूर्व-पूर्व जन्म का सौहार्द है। दुष्यन्त-शकुन्तला के सन्दर्भ में भी उसको जोड़ा गया। यह जो मनोविज्ञान है, इसका अनुभव आप नित्य व्यवहार में करते होंगे, परिवार में भी करते होंगे। कभी-कभी यह व्यंग्य का रूप धारण कर भक्ति के ग्रन्थों में भी आ जाता है।

यशोदा मैया भगवान कृष्ण का शृंगार करती हैं। वे चाहती हैं कि मैंने इतना सुन्दर शृंगार किया है, तो यह खेलते हुए धूल में, कीचड़ में न चला जाये। यह सुन्दर शृंगार धूमिल न हो जाय, कीचड़ में न सन जाये। इसके लिये वे श्रीकृष्ण को तो रोकती ही हैं, साथ-साथ उनके साथ खेलनेवाले उनके सखाओं से भी कहती हैं कि देखना, यह कीचड़ की ओर न जाये, मिट्टी इत्यादि न खाने पावे। पर श्रीकृष्ण हैं कि वे कीचड़ में भी चले जाते हैं और साथ-साथ मिट्टी भी खा लेते हैं। जब माँ के पास यह उलाहना गया। तो यशोदा माँ रुष्ट होकर कृष्ण से कहती हैं कि देख, मैं तेरे शृंगार में इतना परिश्रम करती हूँ और तू मानता नहीं है, कीचड़ में चला जाता है। मैया ने आगे कहा कि हमने महात्माओं से सुना है कि पूर्वजन्म का जो अभ्यास है, वह पूरी तरह से नहीं छूटता। मैं तेरा पूर्व जन्म बता सकती हूँ कि पूर्वजन्म में तू क्या था। भगवान कृष्ण मन ही मन मुस्कराये कि माँ तुम कब से सर्वज्ञ हो गई, कब से योगी हो गई? भगवान ने पूछा, अच्छा बताओ, मैं पूर्व जन्म में क्या था? माँ बोली, मुझे तो लगता है कि पूर्वजन्म में तू सूकर था। कीचड़ में सूकर को बड़ा आनन्द आता है और जब देखो तब वह कीचड़ से सना रहता है। इसका अर्थ है कि तू पूर्वजन्म में सूकर था – **त्वम् सूकरोऽसि गतजन्मनि पूतनारे।** भगवान श्रीकृष्ण ने मन में सोचा कि माँ ने भले ही नाराजगी में कहा हो, पर यह तो सत्य है। मैं पूर्व अवतार में सूकर भी बन चुका हूँ। भगवान सूकर अवतार भी लेते हैं। हो सकता है, उसका अभ्यास अभी बचा हो। तो भक्तों ने उसको एक रसमय रूप में प्रस्तुत किया। वह आप अपने विषय में भी विचार करके देखेंगे। कई लोगों को दूध ही पसन्द नहीं आता। उसको लेकर इतनी मान्यताएँ प्रचलित हैं कि उसको मैं न कहूँ, तो ही ठीक रहेगा। विभिन्न प्रकार से उसकी व्याख्या की जाती है कि इसको दूध पसन्द नहीं आता तो यह पूर्वजन्म में क्या रहा होगा। या कोई अच्छी वस्तु पसन्द नहीं आती, तो वह क्या रहा होगा। अपने पूर्व जन्म से जोड़ने की परम्परा बड़ी पुरानी है।

यह जो चित्त है, उसी में वह संस्कार है। हम बुद्धि से बात समझ लेते हैं और उसको हम व्यवहार में क्रियान्वित करना चाहते हैं, पर चित्त का संस्कार बड़ा प्रबल है। व्यवहार के समय वह संस्कार प्रबल हो जाता है और बुद्धि हार जाती है। इसको गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में और अधिक स्पष्ट किया। उनसे पूछा गया कि महाराज, व्यक्ति सुनता है, पढ़ता है और समझता भी है, पर इतना होते हुए भी फिर वही भूल क्यों दुहराता है? तो इसका सूत्र उन्होंने विनयपत्रिका में इस रूप में दिया। उन्होंने कहा –

मोह जनित मल लाग बिविध
विधि कोटिकु जतन न जाई।

क्यों?

जनम जनम अभ्यास निरत
चित अधिक अधिक लपटाई।।

चित्त में वह सब संग्रहित है और वह चित्त का संस्कार, अभ्यास प्रबल हो जाता है। इस जीवन में हम जो करते हैं, उसमें बुद्धि पराजित हो जाती है। यह बड़ी मनोवैज्ञानिक व्याख्या है। हमारे ऋषियों ने भी व्याख्या की है। हमारे रामचरितमानस में तो इसका बड़ा अद्‌भुत रूप देखने को मिलता है। शोक का केन्द्र है मन और मोह का केन्द्र है चित्त। संस्कृत में मोह शब्द की जो व्युत्पत्ति की गई – '**मोहचित्तविपर्यये**'। इस तरह से उसके लिये शब्द की रचना की गई। जो भ्रम होता है, वह बुद्धि में होता है – **समुझि न परइ बुद्धि भ्रमसानी।**

(क्रमशः)

शिव का भूत

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

''ऐ बच्चो! गरीब को कुछ सिक्के दे दो ...।''

मैला-कुचैला भिखारी अपने फटे चिथड़े को थामे हुए अपने शरीर को ढँकने की कोशिश कर रहा था। उसने नरेन और उसके मित्रों को याचना की दृष्टि से देखा। नरेन ने खेलना बन्द कर दिया और उसके पास चला गया।

भिखारी फिर चिल्लाया, ''मुझे कुछ पैसे दो, ताकि मैं एक कुर्ता खरीद सकूँ, बच्चा ! ...''

''मेरे पास पैसे नहीं हैं ... लेकिन,'' नरेन की आँखें चमक उठीं। ''मैं तुम्हें यह दूँगा ...'' उसने जल्दी से धोती को अपनी कमर से खोल दिया। ''यह नया है और इससे आपके लिए एक अच्छा कुर्ता बन जायेगा ...।''

''आह'' कपड़े को हाथ में लेकर भिखारी ने कहा, ''यह बहुत अच्छा है ... लेकिन पर्याप्त नहीं है, कुर्ता के लिये कम पड़ेगा ...'' नरेन को उदास होते हुए देखकर, उसने जल्दी से कहा, ''चिन्ता मत करो बच्चा... मैं इसे अपने सिर पर पगड़ी बाधूँगा...।''

''नरेन !'' आँगन में भागते ही उसकी माँ की चौंका देनेवाली आवाज ने उसके कदम रोक दिए। ''तुम्हारी धोती कहाँ है?''

''माँ, मैंने इसे एक गरीब आदमी को दे दी'', उसने खुशी से मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

''लेकिन इसे मैंने अभी तुम्हारे लिए खरीदी थी...'' भुवनेश्वरी देवी परेशान दिखीं। ''कितनी बार मैं तुमसे कहूँ कि अपनी सारी चीजें मत देना... मुझसे वादा करो, अगली बार तुम देने के पहले पूछोगे ...।''

अपने इस कार्य से पश्चात्तापरहित नरेन मुस्कुराया और अपना सिर हिला दिया।

''तो ठीक है...'' भुवनेश्वरी देवी ने उसका हाथ पकड़ा

और उसे एक कमरे के भीतर ले गईं। ''सारा दिन यहीं रहो ... अगर तुम अपना विचार बदलते हो, तो मुझे बताना ...''

'यह ठीक नहीं है माँ' नरेन चिल्लाया और एक सोफे से सभी तकियों को उठाकर फर्श पर फेंक दिया।

उन्होंने आदेश दिया, ''उन सबको तुरन्त वापस रखो।'' लेकिन उसने दीवार की ओर मुँह फेर लिया और उनकी ओर देखने से मना कर दिया। ''तुम बहुत अवज्ञाकारी लड़के हो ! मैंने शिव से उनके समान पुत्र के लिए प्रार्थना की ... इसके बदले उन्होंने मुझे अपना एक भूत भेज दिया ...'' कमरे से बाहर आकर उन्होंने दरवाजा बन्द कर दिया।

नरेन ने मुँह फेर लिया। ''जब भी मैं कुछ देता हूँ, तो माँ को क्रोध क्यों आता है? वह भी बहुत कुछ देती हैं ... तो मेरे देने और उनके देने में क्या अन्तर है?''

संगीत की आवाज उसके कानों तक पहुँची और उसने उत्सुकता से खिड़की से बाहर देखा। गायकों का एक छोटा समूह उसके पसंदीदा भजनों में से राम और सीता की स्तुति गा रहा था। ताली बजाते हुए, उसने साथ गाया, उसके मुँह से मधुर शब्द निकल रहे थे। उसकी आवाज सुनकर, गायक खिड़की के नीचे रुक गए और सुन्दर हाव-भाव के साथ नाचने लगे।

उन्होंने कहा, ''तुम बहुत अच्छा गाते हो।

''धन्यवाद।'' नरेन पुनः मुस्कुराया।

''आप सब भी बहुत अच्छा गाते हैं ... वह अद्भुत संगीत था ! ...'' गवैये मुस्कुराये और नमस्कार किया। वे लोग उसकी प्रतिभा से मुग्ध हो गये।

दूसरे लोगों को पैसे देते देख नरेन को लगा कि उसे भी कुछ देना चाहिए। लेकिन जब उसने कमरे के भीतर चारों ओर देखा, तो उसका मन उदास हो गया। कमरा खाली था, सोफे और एक पुराने लोहे के बक्सा को छोड़कर, कुछ नहीं था ।

''शायद,'' उसने सोचा। '' हाँ, शायद वहाँ कुछ है...''

कुछ प्रयास से भारी ढक्कन उठाकर, उसने बक्सा के भीतर झाँककर देखा और उसे सही उपहार दिखा।

''रुको,'' उसने गवैयों को पुकारा, वापस खिड़की की ओर दौड़ा और उन्हें सुन्दर रेशमी साड़ियाँ फेंक दी।

''ये बहुत महँगे हैं,'' उन्होंने कहा। ''क्या तुम्हारी माँ नाराज नहीं होंगी?''

नरेन गम्भीर हो गया, लेकिन अगले ही पल उसका चेहरा एक आनन्दमय मुस्कान में बदल गया। ''माँ को बुरा नहीं लगेगा ... वह कहती है कि हमें हमेशा अपनी प्रसन्नता, अच्छा सौभाग्य दूसरों के साथ बाँटनी चाहिए ...''

उसे और उसकी माँ को आशीर्वाद देते हुए कलाकारों ने अलविदा ली कहा और नरेन खिड़की के पास रुका रहा, एक और गीत की धुन शाम की ठण्डी हवा में उसके कानों में पुनः आ रही थीं।

* * *

सबसे छोटा आदमी वह है, जिसका हाथ माँगने के लिए फैलता है और सबसे बड़ा मनुष्य वह है, जिसका हाथ देने के लिए उठता है। हाथ हमेशा देने के लिए बनाया गया था। – स्वामी विवेकानन्द

कविता

होली खेलत भैरवनाथ

डॉ. अनिल कुमार फतेहपुरी, गयाजी, बिहार

भैरवी संग लिए, होली खेलत भैरवनाथ ।।
डिमि-डिमि-डिमि-डिमि डमरू बजावत,
सुतल मशान के शम्भु जगावत ।
भूत अरु प्रेत बुलावत धावत,
सब जन मिलि-जुलि नाचत गावत ।।
सबही नवावत माथ, भैरवी संग लिए ...

गंगाजल के रंग बनावत,
सब अंगन में भस्म रमावत।
सुर-नर-मुनि देखत भय खावत,
भैरवी राग में फाग सुनावत।।
शंकर त्रिभुवननाथ, भैरवी संग लिए ....

पथ पर हो पथिक न अब निराश

रामबरन सिंह, 'करुण'

पथ पर हो पथिक, न अब निराश ।
बीती जीवन की अमा रात,
यह साथ तुम्हारे है प्रभात,
जब पास नहीं, नव-त्रास आश ।

झरने नदियाँ हों उथल-पुथल,
बस लक्ष्य बने अपना समतल,
समभाव रहे सार्थक प्रयास ।

किरणें पाकर पंकज विकसित,
नव-मन्द पवन में हो विलसित,
सत्-पथ यात्रा का है प्रवास ।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस विशेष

मारवाड़ की वीरांगना : अमृता देवी

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

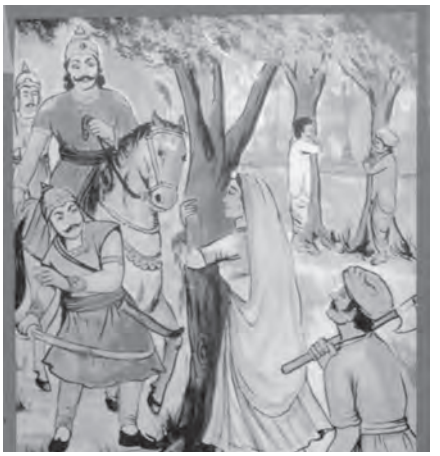

८ मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस है, जो व्यापक रूप से सम्पूर्ण विश्व में मनाया जाता है। इस महिला दिवस के अवसर पर हम एक ऐसी महिला के बारे में जानेंगे, जिन्होंने अपना बलिदान दे दिया। वे महान महिला हैं – अमृता देवी।

वर्ष १७३० ई. में जोधपुर मारवाड़ के महाराज अभय सिंह ने मेहरानगढ़ में पूल महल का निर्माण आरम्भ करवाया। इसके लिये लकड़ियों की आवश्यकता पड़ी। राजा के कुछ सैनिकों ने मारवाड़ के खेजड़ली गाँव में एक साथ बड़ी संख्या में पेड़ देखा, तो उसे काटने पहुँच गये। गाँव की ही एक महिला, अमृता देवी बिश्नोई ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा – ''मैं पेड़ काटने नहीं दूँगी, ये पेड़ मेरी माँ हैं।' यह कहते हुए पेड़ काटने से पहले अपने हाथों से घेरा बनाकर पेड़ से लिपट गईं। विरोध को अनसुना कर, सैनिकों ने तलवार से अमृता देवी की गर्दन काट दी। इसके बाद बारी-बारी से उनकी तीन पुत्रियों ने पेड़ को बचाने के लिए अपना बलिदान दे दिया।

पेड़ बचाने के लिये अमृता देवी की मृत्यु की सूचना जब आसपास के गाँव में फैली, तो बड़ी संख्या में लोग एकत्र हो गये। आसपास के ६० गाँव के २१७ परिवारों के २९४ पुरुष और ६९ महिलायें विरोध करने उस गाँव में पहुँच गये। ये सभी लोग विरोध करने के लिए पेड़ों को पकड़ कर खड़े हो गये। राजा के सैनिकों ने बारी-बारी से सभी की गर्दन काट दी। एक साथ इतनी बड़ी संख्या में लोगों के मारे जाने की सूचना जब महाराजा तक पहुँची, तो तुरन्त उन्होंने सभी को वापस लौटने का आदेश दिया। इसके बाद महाराज ने लिखित में आदेश जारी किया कि मारवाड़ में कभी माँ खेजलड़ी के पेड़ को काटा नहीं जायेगा। आज तक महाराज के आदेश का पालन होता आ रहा है। तब से लेकर आज तक बलिदान दिवस के रूप में खेजलड़ी गाँव में मेला लगता है। यहाँ इन शहीदों का एक स्मारक और वनक्षेत्र विकसित किया गया है। इस मेले में हजारों की संख्या में श्रद्धालु पहुँचते हैं और बलिदानियों को नमन करते हैं। रेगिस्तान के कल्पवृक्ष खेजलड़ी को 'शमी' वृक्ष के नाम से भी जाना जाता है, यह मूलत: रेगिस्तान में पाया जाने वाला वृक्ष है, जो थार के मरुस्थल व अन्य स्थानों में भी पाया जाता है।

शमी का वृक्ष

रेगिस्तान में भी हरियाली बनाये रखने के लिए इस (शमी) पेड़ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस पेड़ पर लगनेवाले सामरी फल की सब्जी बनती है। इसकी पत्तियों से बकरियों को भोजन मिलता है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्र में खेजलड़ी आय का प्रमुख साधन भी माना जाता है।

वह नारी ही है, जो प्रकृति की रक्षा के लिये बलिदान देती है। नारी स्वस्थ समाज के लिये शक्ति का अवतार है, ईश्वर के समान है, धैर्य का प्रमाण है और जीवन का आधार है। नारी जगत्जननी और महान है।

एक बार किसी अँग्रेज ने स्वामी विवेकानन्द जी से यह पूछा कि आपके देश की नारी हाथ क्यों नहीं मिलाती? तब स्वामीजी ने उत्तर दिया था – ''क्या आपके देश की महारानी से कोई भी हाथ मिला सकता है?'' तब अँग्रेज ने कहा – 'बिल्कुल नहीं'। तब स्वामीजी ने कहा – ''हमारे देश की प्रत्येक नारी महारानी है।''

अत: परिवार और समाज के लिये बलिदान देनेवाली, अपना सब कुछ समर्पित करनेवाली प्रत्येक नारी का हमें भी सम्मान करना चाहिए और नारियों को भी अपनी मर्यादा का सदैव ध्यान रखना चाहिए। ○○○

रामनवमी-विशेष

राममयजीविता सीता

स्वामी बलभद्रानन्द

सह-महासचिव, रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

अनुवाद – चम्पा भट्टाचार्य, भिलाई

''सीता हमारे राष्ट्रीय जीवन के अन्दर तक प्रवेश कर गई हैं। प्रत्येक हिन्दू नर-नारी के रक्त-कण में सीता समाहित हैं। हम सभी सीता की सन्तान हैं।'' यह कथन स्वामी विवेकानन्द जी का है। बचपन से ही स्वामीजी रामायण के चरित्रों, विशेष रूप से सीता के अत्यन्त अनुरागी थे। उन्होंने कहा – सीता के बारे में और क्या कहूँ ! तुम लोग पृथ्वी के समस्त अतीत साहित्य देख सकते हो, भविष्य में जो साहित्य होगा, उसमें भी खोज कर देख सकते हो – सीता जैसा एक दूसरा चरित्र खोजने पर भी नहीं मिलेगा। सीता अनन्या हैं, यह चरित्र एक बार ही रचित हुआ। शायद राम कई हो सकते हैं, लेकिन सीता दूसरी नहीं होगी। वास्तव में सीता भारतीय नारी का सम्पूर्ण प्रतिरूप हैं। क्योंकि निर्दोष नारी-चरित्र का समस्त भारतीय आदर्श सीता के उस अनन्य जीवन से निर्मित हुआ है। चिरकाल तक सीता रहेंगी। वही गौरवमयी सीता, जो पवित्रता से भी पवित्रतमा धैर्य की प्रतिमूर्ति और सर्वंसहा हैं। हमारे समस्त वेद, पुराण हमेशा के लिए अदृश्य हो सकते हैं, हमारी संस्कृत भाषा चिरकाल के लिये लुप्त हो सकती है, लेकिन जब तक पाँच अशिक्षित हिन्दू रहेंगे, सीता की कहानी रहेगी।''

श्रीरामकृष्ण ने दास्य भक्ति साधना के समय पंचवटी में ध्यान चिन्ता के बिना प्रत्यक्ष सीता देवी का दर्शन किया था। उन्होंने कहा – 'जन्मदुखिनी सीता को सबसे पहले देखा था ! सम्भवत: इसीलिए उसके जैसा आजन्म दुख भोग रहा हूँ। कह सकते हैं – अवतार के दुख सर्वसाधारण मानव के आध्यात्मिक, आधिदैविक और अधिभौतिक दुख के समान हैं।

'जन्मदुखिनी सीता, राममयजीविता सीता, श्रीरामकृष्ण ने इन दो शब्दों में सीता के जीवन स्वरूप के लक्षण वर्णित किये हैं। आदिकाण्ड को छोड़कर रामायण के अन्य छह काण्डों में स्पष्ट और अनसुनी रूप से जानकी की दुखमयी कहानी है और वह कहानी श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक की घटना होने के साथ आरम्भ होती है। सम्पूर्ण अयोध्या

आनन्दित है। दशरथ के योग्यतम ज्येष्ठपुत्र, दशरथ की आँखों के तारे रामचन्द्र कल राजपद में अभिषिक्त होंगे। राम तीनों माताओं और तीनों भाइयों के भी आँखों के तारे हैं। इसलिए सभी प्रसन्न हैं। दशरथ प्रसन्न हैं, कौशल्या-सुमित्रा भी प्रसन्न हैं, निश्चित रूप से सीता भी अति प्रसन्न हैं। ऐसे समय में कैकेयी के मन को मंथरा ने विषैला कर दिया। मंथरा आसानी से सफल नहीं हुई। मंथरा की मन्त्रणा के उत्तर में कैकेयी ने कहा – ''राम धर्मज्ञ, गुणवान, शान्त, कृतज्ञ और सत्यवादी हैं। राम ज्येष्ठ राजपुत्र हैं, इसलिए युवराज के अधिकारी हैं। राम ने कौशल्या से भी अधिक मेरी सेवा की है। राम का राज्य होना, भरत का राज्य होने जैसा है।''

चतुर मंथरा प्रयास करना नहीं छोड़ी। मंथरा के इस तर्क ने कैकेयी के मन को दिशा दी थी – ''तुम जो सोच रही हो, वह ठीक नहीं है। राजा के सभी पुत्रों को राज्य नहीं मिलता, राज्य में सबके रहने से महा अनर्थ होता है। राम राज्य पाते ही निश्चित रूप से भरत को देशान्तर या लोकान्तर भेज देंगे। (अयोध्या काण्ड ८/२१) इसके सिवाय इतने दिन तो तुमने घमण्ड से कौशल्या के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया, वह क्या उसका प्रतिशोध नहीं लेगी?''

दर्पान्निराकृता पूर्वं त्वया सौभाग्यवत्या च।
राममाता सपत्नी ते कथं बैरं न जायते।

(अयोध्या काण्ड ८/३७०)

पुत्र का अकल्याण और वास्तव में अब तक कौशल्या के साथ अच्छा व्यवहार न करना, कौशल्या के हाथों उसका परिणाम पाने की आशंका, दोनों ही कैकयी को अब सही लगने लगा। मंथरा की युक्ति ने कैकेयी को अभिभूत कर दिया। कैकेयी ने दृढ़ता से दशरथ से उनके पूर्व में दिये हुए दो वरदानों में भरत को राज्य और राम को १४ वर्ष के लिए वनवास माँगा। दूसरे दिन सबेरे राज्याभिषेक के समय दशरथ ने राम को बुलाया। सम्पूर्ण अयोध्या कल के राज्याभिषेक की तैयारी में आनन्द विभोर थी। रामचन्द्र ने भी राज्याभिषेक के अनुरूप वस्त्र और भूषण धारण किए थे। जब राम पिता के पास पहुँचे, तो शोक और हृदयविदारक कष्ट से बात नहीं कर पाए। लेकिन कैकेयी वहीं थीं। तब वे हृदयहीन हो चुकी थीं। बिना संकोच, बिना लज्जा के उन्होंने रामचन्द्र को दुखदायी समाचार दिया। श्रीराम ने शान्ति से सब कुछ सुना और पिता के वचन के सत्य-पालन हेतु वन जाने के लिये तत्पर हो गए। किन्तु इसके पहले इस मर्मस्पर्शी परिवर्तन की घटना को माता कौशल्या और सीता को बताना आवश्यक है। क्योंकि वे दोनों ही उनके सबसे निकट हैं – एक गर्भधारिणी, दूसरी सहधर्मिणी हैं। वे दोनों आनन्दित होकर उनके राज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रही हैं। श्रीराम ने जब कौशल्या को वनवास की सूचना दी, तो कौशल्या शालवृक्ष के कटे हुए तने के समान मूर्छित होकर धरती पर गिर गईं। (अयोध्याकाण्ड २०/३२) कुछ समय बाद सचेत होने पर श्रीराम ने बहुत प्रयत्न से उन्हें सान्त्वना दी। उसके बाद उन्होंने सीता देवी के पास आकर यह समाचार दिया।

लेकिन सीता दुखदायी समाचार सुनकर कौशल्या माँ के समान मूर्छित नहीं हुईं। क्योंकि वे जानती थीं कि राम जहाँ भी रहेंगे, वे स्वयं भी वहीं रहेंगी और वही सीता के लिए राजमहल के समान होगा। राम ने सीता को विभिन्न प्रकार के उपदेश देकर कहा – तुम्हें अयोध्या में ही रहना होगा, क्योंकि किसी के प्रति अपराध न हो, यही कार्य तुम्हें करना होगा। यही तुम्हारे लिये मेरी आज्ञा है। तब सीता ने दृढ़ता से श्रीराम से कहा – आप गम्भीर बात को इतने हल्के में कैसे बोल रहे हैं? आपकी बातें सुनकर मुझे हँसी आ रही है। आपने जो कहा, वह अस्त्र-शस्त्र-निपुण वीर राजपुत्र के कहने योग्य नहीं है और अपयश देनेवाला है। इसलिए सुनने के अयोग्य है। पिता, माता, भाई, पुत्र, पुत्रवधू, सभी अपने-अपने भाग्य के अनुसार चलते हैं। एकमात्र पत्नी ही पति का भाग्य प्राप्त करती है। इसलिए आपके साथ मैं भी वनवास जाने के लिए आदेश प्राप्त की हूँ। यदि आप आज ही दुर्गम वन में प्रस्थान करें, तो मैं भी मार्ग के कुश और काँटे दमन कर आपके आगे-आगे चलूँगी। मेरी पतिव्रत के प्रति विश्वास रखकर, भोजन के अन्त में पानीय जल के समान मुझे साथ ले चलें। मुझमें कोई पाप नहीं है। अट्टालिका में रहते हुए या आकाशयान से आकाश-भ्रमण से भी अधिक पति के श्रीचरणों में रहना, सती नारी के लिए अधिक महत्त्व का विषय है। विभिन्न परिस्थितियों में कैसे रहना चाहिए, इस विषय में मेरे माता-पिता ने पर्याप्त उपदेश दिया है। इसलिए आपके सम्मुख न रहने पर मुझे किस प्रकार रहना होगा, इस विषय में और कुछ मत कहिये। आज मैं आपके साथ वन जाऊँगी ही, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वन जाने के लिए तत्पर मुझे कोई भी इससे दूर करने में समर्थ नहीं होगा। (अयोध्या काण्ड २७/२-५/, ७-१०,१५)

राम के साथ वन-गमन के लिए सीता और भी अटल थीं। १५ साल बाद वही सीता रामविहीन वनवास समाचार सुनते ही मूर्छित हो गईं। रावण-वध के बाद राम-सीता पुनः अयोध्या वापस आ गए। अयोध्या का राजमहल और समस्त अयोध्यापुरी में प्रत्येक व्यक्ति आनन्दित है। क्योंकि यही वह बहु प्रतीक्षित रामराज्य है। श्रीराम और सीता उस दिन अधिक आनन्द में हैं। क्योंकि उसी दिन राम को ज्ञात हुआ कि सीता माँ बनने वाली है। प्रसन्न होकर श्रीराम ने कहा, मैं सीता देवी की कोई भी मनोकामना को पूर्ण करना चाहता हूँ। सीता ने कहा – मैं तपोवन में मुनि और मुनिपत्नी के साथ एक रात रहना चाहती हूँ। उसी दिन राम ने सुना कि प्रजा रावण-राज्य में सीता के रहने को लेकर विभिन्न प्रकार की बुरी बातें कह रही है। सीता जिसे किसी भी प्रकार के पाप ने स्पर्श न किया हो, यह जानकर भी राम ने सीता के त्याग का निर्णय लिया। राम के आदेश से दूसरे ही दिन सीता को लेकर लक्ष्मण ने वन हेतु यात्रा की। लक्ष्मण ने कहा – आपकी इच्छा पूर्ति के लिए राम आपको तपोवन

दर्शन के लिय भेज रहे हैं। दूसरे दिन गंगा किनारे वाल्मीकि आश्रम के पास पहुँचकर लक्ष्मण ने रोते-रोते सीता को बताया कि एक-दो दिन के लिये नहीं, रामचन्द्र ने उन्हें लोकापवाद के डर से हमेशा के लिये वनवास भेजा है। तब सीता तुरन्त मूर्छित होकर धरती पर गिर गईं। चेतना आने पर सीता आँसू बहाते हुए बोलने लगीं – सौमित्र, भगवान ने मुझे दुख भोगने के लिए बनाया है। पता नहीं क्या पाप की थी या किसी का पत्नी-विच्छेद कर दी थी। इसलिए लगता है राजा ने मुझे पवित्र जानते हुये भी परित्याग कर दिया। लक्ष्मण, पहले मैं पति के पद-छाया में रहूँगी, यह कहकर स्वेच्छा से वनवास स्वीकार की थी। अब मैं उनके बिना कैसे निर्जन में रहूँगी? मेरे गर्भ में अभी राजा की सन्तान है। मैं तो अब उनके वंशलोप के भय से आत्महत्या भी नहीं कर सकती, इत्यादि।'' सीता का यह विलाप हम सबके हृदय को विदीर्ण कर देता है।

दक्षिणेश्वर में जब श्रीरामकृष्ण ने सीताजी का दर्शन किया था, तो उन्होंने उनके मुख-मण्डल पर प्रेम-दुख-करुणा और सहिष्णुता के साथ अपूर्व ओजस्वी गाम्भीर्य भाव भी देखा था। जो देवी-मूर्तियों में भी साधारणत: दिखाई नहीं देता। यह ईसामसीह के दर्शन-प्रसंग में भी हम देखते हैं। श्रीरामकृष्ण का यह प्रत्यक्ष दर्शन कितना सत्य है। सीता देवी के इस ओजस्वी रूप का प्रकाश हम रामायण में दो बार देखते हैं। पहला रावणवध के पश्चात् जब सीता के चरित्र पर संदेह कर राम ने कहा था – ''इस युद्ध का आयोजन तुम्हारे लिए नहीं हुआ। मैंने यह कार्य अपने चरित्र की रक्षा, सर्वत्र अपवाद खण्डन और मेरे प्रसिद्ध वंश की ग्लानि दूर करने के लिए किया है। अब तुम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव या विभीषण जो पसन्द हो, उसके पास चली जाओ अथवा तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करो। तब सीता एक किनारे गहरे दुख और तेज के साथ न्यायसंगत भाषा में बोली थीं – ''नीच व्यक्ति नीच स्त्री को जैसे बोलते हैं, आप भी वैसे ही मुझे क्यों बोल रहे हैं? जब आपने हनुमान को लंका भेजा था, तभी मुझे त्यागने की बात क्यों नहीं बतायी? मैं उसी समय जीवन त्याग देती। आप लोगों को व्यर्थ कष्ट नहीं सहना पड़ता। पराधीन, विवश अवस्था में रावण ने मेरे शरीर को स्पर्श किया था, यह दोष मेरी इच्छा से नहीं हुआ। लेकिन मेरे हृदय में आप ही थे। दीर्घकाल हम परस्पर साथ रहे। हमारे परस्पर प्रेम में वृद्धि हुई। इसके बाद भी यदि आप मुझे समझ नहीं पाए, तो मेरे लिये यह मृत्यु है। जनक के नाम से मेरा परिचय है, वसुन्धरा से मेरी उत्पत्ति है, यह सब आपने नहीं सोचा। आप चरित्रवान हैं, किन्तु आपने मेरे महान चरित्र का सम्मान नहीं किया। सीता की प्रत्येक बात यहाँ संयमित, तर्कपूर्ण और दृढ़ है। सत्य है, इसलिए दृढ़ है। उनका मर्यादित शब्द चयन भी देखने योग्य है। अचानक आघात के पल में भी जो आघात दे रहे हैं, उन रामचन्द्र को उन्होंने स्पष्ट रूप से नीच नहीं कहा। क्योंकि सीता जानती थीं कि रामचन्द्र नीच व्यक्ति नहीं है। वैसे ही वे स्वयं भी नीच नहीं हैं। सीता ने रामचन्द्र की अनुचित बातों का सम्यक् विरोध किया, लेकिन उसके उत्तर में कोई भी अनुचित वाक्य का प्रयोग नहीं किया।

इसके बाद की घटना को हम सभी जानते हैं । सीता के निर्देश से लक्ष्मण ने अग्नि प्रस्तुत किया। राम की प्रदक्षिणा और हाथ जोड़-प्रणाम करके सीता अग्नि में प्रवेश कर गईं। अग्निदेव उसे गोद में लेकर बाहर आए। अन्य देव-देवियों का भी आविर्भाव हुआ। उन सभी ने राम से कहा – सीता अपापविद्धा है। तब राम ने सीता को ग्रहण किया।

इसके बाद रामायण के अन्तिम भाग में सीता अपनी दृढ़ता और आत्म-सम्मान का परिचय देती हैं। राम के द्वारा वनवास में भेजी जाने पर बारह वर्ष बीत गये। जुड़वा पुत्र लव और कुश सीता और वाल्मीकि की शिक्षा से क्षत्रिय और तपस्वी जैसे श्रेष्ठ गुणों से भूषित हो गए। वाल्मीकि रचित रामायण आख्यान को लव और कुश ने लालित्यपूर्ण मधुर संगीत के द्वारा प्रस्तुत किया। एक दिन मुनि वाल्मीकि जी के साथ अयोध्या की राजसभा में जाकर दोनों बालकों ने रामायण गान किया। राम समझ गए, ये दोनों उनके और सीता के पुत्र है। राम ने सीता को वापस बुलाने की इच्छा से कहा – यदि दूसरे दिन सीता राजसभा में आकर सौगंध लेकर कहे कि वह शुद्ध है, तभी मैं उसे ग्रहण करूँगा। दूसरे दिन वाल्मीकिजी सीता को लेकर राम की सभा में उपस्थित होकर बोले – ''राम तुमने लोक-अपवाद के भय से सीता का त्याग किया। अब तुम ही आज्ञा दो कि कैसे सीता तुम्हें विश्वस्त करे। ये दोनो जुड़वा पुत्र तुम्हारे ही हैं। मैं प्रचेता का पुत्र आज तक कभी झूठ नहीं बोला हूँ।'' राम ने कहा – ''आपने जो कहा, मैं विश्वास करता हूँ। ये लव-कुश मेरे ही पुत्र हैं, यह मैं जानता हूँ। फिर भी जनता के सम्मुख सीता की विशुद्धता प्रमाणित हो, तो मुझे प्रसन्नता होगी।

तब गैरिक वस्त्रधारिणी सीता अधोवदन धरती की ओर देखती हुई बोलीं – अगर मैं तन-मन-वचन से केवल राम की ही अर्चना की हूँ, तो भगवती वसुन्धरा, तुम मुझे अपनी गोद में स्थान दो। धरती से एक दिव्य सिंहासन पर विराजमान धरित्री देवी ऊपर आईं। उन्होंने माता जानकी को गले लगाकर सिंहासन पर बैठाया और उन्हें लेकर धरती में प्रवेश कर गईं।

सीता का अदृश्य प्रकरण दुखदायी है, लेकिन इसमें उनकी अतुलनीय तेजस्विता प्रकट होती है। लोक-निन्दा के डर से तत्कालीन आदर्श के अनुसार प्रजारंजक राजा राम ने कर्त्तव्य के लिए अपना हृदय निकलने जैसे अपनी पत्नी का विसर्जन कर दिया। सीता ने पति के कलंक को मिटाने के लिए उस सजा को निर्विवाद मान लिया। बारह वर्ष के बाद पुन: जब राम ने सबके सामने सौगंध लेकर सीता को अपनी शुद्धता प्रमाणित करने के लिये कहा, तब भी उन्होंने वही किया। क्योंकि सीता समझती थीं, इस बार भी राम प्रजानुरंजन के प्रयोजन से हृदय का रक्त बहा रहे हैं। किन्तु एक पतिव्रता, पतिप्राणा होकर भी उन्हें अब और पति के साथ पुनर्मिलन की इच्छा नहीं है। सीता का कर्त्तव्य पूरा हो गया। राम कलंक मुक्त हो गए। राम के दोनों पुत्रों का बारह वर्ष तक उन्होंने पालन-पोषण किया। जीवन-पथ में आगे बढ़ने के योग्य बनाया। इसलिए अपनी 'पवित्रतास्वरूपिणी' स्वरूप को चिर प्रतिष्ठित कर विदा लीं। सीता का आत्मसम्मान-बोध ने इस स्थान पर मर्यादा पुरुषोत्तम की महिमा को पीछे कर दिया।

दूसरी बात। राम के वनवास प्रस्ताव में जब कैकेयी और मन्थरा को छोड़ सभी विचलित थे, क्षुब्ध और क्रुद्ध थे और सीता राम के साथ वन जाएँगी, यह निश्चित हो चुका, तब राजगुरु वशिष्ठ ने कहा था –

न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते।
अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम्।।

(अयोध्या काण्ड ३७/२३)

''देवी सीता को वन जाने की आवश्यकता नहीं है। सीता राम के लिए निश्चित आसन अर्थात् राजसिंहासन में बैठेगी।'' वशिष्ठ के इस प्रस्ताव की ओर किसी ने ध्यान दिया, ऐसा रामायण में दिखाई नहीं देता। उसका कारण सम्भवत: सीता स्वयं वनवास जाने की अभिलाषी हैं, किसी के अनुरोध से अयोध्या में रहकर राज्यशासन नहीं करतीं। इसके सिवाय जो दो पितृ-वचन के सत्य-पालन के लिये राम वन जा रहे हैं, उसमें से एक का पालन नहीं होता। सर्वोपरि युग का प्रयोजन अर्थात् अधम मूर्ति रावण-वध अपूर्ण रह जाता।

लेकिन वशिष्ठ पुराण और इतिहास समर्थक महाशक्तिधर पुरुष थे। वे मित्रावरुण के पुत्र थे। दस प्रजापतियों में अन्यतम थे। विविध पुराणों के अनुसार वशिष्ठ सप्त ऋषियों में से एक हैं। ब्रह्मा के सप्त मानस पुत्रों में से एक वशिष्ठ जी के तेज से विश्वामित्र ध्वस्त हो गये। ऐसे मनुष्य के मुख से निकली हुई बात कभी निष्फल नहीं हो सकती। ऋषि की वाणी पर उस समय भले ही कोई ध्यान नहीं दिया, किन्तु वह वाणी त्रेता युग में नहीं, द्वापर युग में भी नहीं, इस कलियुग में सार्थक हुई। जब श्रीराम रामकृष्ण बन कर आए और उन्होंने अपनी लीलासंगिनी श्रीमाँ सारदा को कहा, ''क्या केवल मेरा ही दायित्व है? तुम्हारा दायित्व!'' ''इसने क्या किया? तुम्हें इससे कई गुना अधिक करना होगा।'' इसलिए हम देखते हैं, श्रीरामकृष्ण के देहत्याग के बाद श्रीमाँ रामकृष्ण-सारदा होकर सबकी माँ, असीमित माँ, जन्म-जन्मान्तर की माँ बनकर विराजमान हुईं।

श्रीमाँ ने कभी स्वयं कहा था – ''मैं सीता हूँ।' श्रीरामकृष्ण ने पंचवटी में सीता देवी के हाथ में जैसा कंगन देखा था, वैसा ही डायमण्ड कट कंगन बनवाकर माँ को दिया था। विष्णुपुर रेलवे स्टेशन पर एक पश्चिम देशीय कुली ने श्रीमाँ को 'जानकी माँ' कहकर पुकारा था। श्रीमाँ ने उस कुली के दर्शन को मान्यता देकर उसी रेलवे स्टेशन में उसे दीक्षा प्रदान की।

पचीस वर्ष पहले की बात है। मैं कलकत्ता पुस्तक मेला में इंस्टिट्यूट ऑफ कल्चर के स्टाल में खड़ा था। तब मेला बन्द होने का समय हो गया था। भीड़ भी कम हो गयी थी। अचानक एक चार-पाँच वर्ष का बालक हमारे स्टाल के पास से जाते-जाते तीव्र गति से अन्दर प्रवेश किया। बच्चे के पीछे-पीछे उसकी माँ भी अन्दर आ गयी। बीच के टेबुल पर 'शत रूपे सारदा' की कुछ प्रतियाँ रखी हुई थीं। बालक सीधे वहाँ जाकर शतरूपे सारदा के आवरण पृष्ठ को दिखाकर जोर-जोर से माँ को बोलता रहा, ''देखो माँ सीता! देखो माँ सीता!'' मैं अवाक् हो गया। ○○○

(उद्बोधन से साभार)

जिज्ञासा, आन्तरिक निष्ठा और विनम्रता

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

१. जिज्ञासा और निर्भीकता

आज युवाओं के जीवन में सबसे बड़ी आवश्यकता है – जिज्ञासा। परीक्षा की तैयारी हो अथवा नौकरी का कोई प्रोजेक्ट, केवल सतही जानकारी से सन्तोष कर लेना आगे बढ़ने का मार्ग बन्द कर देता है। जो विद्यार्थी अपने अध्यापक से बिना झिझक प्रश्न करता है, वही गहन समझ विकसित कर पाता है। कार्यक्षेत्र में भी जो कर्मचारी अपने वरिष्ठ से स्पष्ट प्रश्न पूछने का साहस रखता है, वही त्रुटि से बचकर प्रगति करता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रश्न करने की निर्भीकता ही नवाचार और आत्मविश्वास की जड़ है। जिज्ञासा को दबाने वाला युवक भीड़ में खो जाता है, पर प्रश्न पूछने वाला युवक नेतृत्व की ओर अग्रसर होता है।

भारत की पहली महिला सायटोजेनेटिस्ट (Cytogeneticist) डॉ. जानकी अम्मल ने पादप-प्रजनन और गन्ने की नई प्रजातियों पर शोध किया। उस समय महिला वैज्ञानिकों को गम्भीरता से नहीं लिया जाता था, पर उन्होंने निर्भीक प्रश्न उठाए – ''क्यों महिलाएँ विज्ञान में आगे नहीं बढ़ सकतीं?'' उनकी खोजों ने भारत को गन्ना उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता की।

शिक्षा : निर्भीक जिज्ञासा ही रूढ़ियों को तोड़कर नए अवसर का द्वार खोलती है।

ताराबाई मोडक (१८९२-१९७३) – ग्रामीण शिक्षा की जननी

उन्होंने महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में बच्चों के लिए बालनिकेतन और आंगनवाड़ी जैसी शिक्षा पद्धति की शुरुआत की। उनका उद्देश्य था – गाँव के बच्चे भी प्रारम्भिक शिक्षा से वंचित न रहें। उनकी शिक्षा पद्धति आज भी ICDS (इण्टीग्रेटेड चाइल्ड डेवलपमेण्ट सर्विसेज) की नींव है।

शिक्षा : उन्होंने अनुभव से सीखने और सरलता से शिक्षा देने की कला दिखाई।

कमला सोहोनी (१९११-१९९८)

विज्ञान में पीएच.डी. प्राप्त करनेवाली भारत की पहली महिला जब उन्होंने इण्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बेंगलुरु में रिसर्च के लिए आवेदन दिया, तो उन्हें मना कर दिया गया, क्योंकि वे महिला थीं। उन्होंने निर्भीक होकर प्रश्न उठाया और अन्ततः प्रवेश पाया। उनके शोध ने भारत में पोषण विज्ञान और विटामिंस के अध्ययन को नई दिशा दी।

शिक्षा : प्रश्न पूछने का साहस और ज्ञान के लिए संघर्ष ही वास्तविक जिज्ञासा है।

२. धैर्य, आत्मसंयम और आन्तरिक निष्ठा

आज की पीढ़ी सबसे अधिक जिस रोग से ग्रस्त है, वह है अधैर्य। परीक्षा में एक असफलता मिलते ही छात्र निराश हो जाते हैं, और कार्यक्षेत्र में प्रमोशन न मिलने पर कई कर्मचारी नौकरी बदलने को ही समाधान मानते हैं। किन्तु सच्चाई यह है कि सफलता तात्कालिक उपलब्धि नहीं, बल्कि दीर्घकालिक धैर्य और आत्मसंयम का परिणाम है। जिस युवक में निरन्तरता और अनुशासन की दृढ़ता है, वही कठिनाइयों के बीच भी अविचल रहकर लक्ष्य तक पहुँचता है। परिस्थितियाँ सदैव अनुकूल नहीं होतीं, किन्तु आन्तरिक

निष्ठा रखने वाला ही विपरीत समय को अवसर में बदल देता है। जैसे बीज अन्धकार में दबकर भी वृक्ष बनने की राह खोज लेता है, वैसे ही धैर्यवान युवा विपत्ति के गर्भ में भी सफलता का द्वार खोज लेता है।

ताराबाई शिंदे (१८५०-१९१०) – पहली नारीवादी लेखिका

उन्होंने १८८२ में 'स्त्री-पुरुष तुलना' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें स्त्रियों पर हो रहे अन्याय पर निर्भीक प्रश्न उठाए। समाज की आलोचना और उपहास सहते हुए भी वे सत्य से पीछे नहीं हटीं। उनका जीवन आत्मसंयम और निष्ठा का उदाहरण है, क्योंकि उन्होंने व्यक्तिगत कठिनाइयों से ऊपर उठकर सामाजिक न्याय की राह चुनी।

शिक्षा : सच्ची निष्ठा का अर्थ है – कटु परिस्थितियों में भी न्याय का साथ देना।

रुक्मिणी देवी अरुंडेल (१९०४-१९८६) – भारतीय नृत्य की पुनरुद्धारक

जब भरतनाट्यम को 'नाचने वाली स्त्रियों का नृत्य' कहकर तिरस्कृत किया जाता था, तब रुक्मिणी देवी अरुंडेल ने आत्मसंयम और गहन निष्ठा से इसे पुनर्जीवित किया। उन्होंने 'कलाक्षेत्र' की स्थापना की और भरतनाट्यम को विश्वस्तर पर प्रतिष्ठा दिलाई। उनका कार्य आज करोड़ों कलाकारों के लिए प्रेरणा है, पर साधारणत: इतिहास में उनका नाम कम ही लिया जाता है।

शिक्षा : निष्ठा वह शक्ति है, जो उपेक्षित परम्परा को भी गौरवशाली बना देती है।

३. विनम्रता और अनुभव से सीखने की कला

प्रतिस्पर्धा के युग में प्राय: यह भूल हो जाती है कि दूसरों से श्रेष्ठ बनने की होड़, ईर्ष्या में नहीं बदलनी चाहिए अर्थात् प्रतिस्पर्धा का उद्देश्य ईर्ष्या नहीं, आत्मोन्नति होना चाहिए। यदि कोई सहपाठी या सहकर्मी अधिक योग्य है, तो उससे असन्तोष नहीं, बल्कि सीखने की प्रेरणा लेनी चाहिए। विनम्रता ही वास्तविक प्रगति का द्वार खोलती है। साथ ही, यह समझना भी आवश्यक है कि जीवन की कुछ बातें पुस्तकों या इंटरनेट से नहीं, बल्कि अनुभव और मार्गदर्शक से ही समझी जा सकती हैं। जो युवा अपने बड़ों का परामर्श विनम्रतापूर्वक स्वीकार करता है, वही कठिनाइयों के बीच भी सुरक्षित और सशक्त होकर आगे बढ़ता है। आत्मविश्वास का सही रूप यही है कि हम अपनी कमियों को पहचानें, श्रेष्ठ से सीखें और अनुभव को अपना पथप्रदर्शक बनाएँ।

अन्ना मणि (भारत की 'वेदर वुमन')

अन्नामणि, जिनका नाम सामान्य जनमानस में बहुत कम जाना जाता है, भारत की एक महान् भौतिक वैज्ञानिक और मौसम विज्ञानी थीं। उन्होंने भारतीय मौसम विभाग में कार्य करते हुए वायुमण्डलीय दाब, सौर विकिरण और वायुमान (ozone) के मापन के उपकरणों के विकास में असाधारण योगदान दिया। उनका जीवन विनम्रता और अनुभव से सीखने की अद्वितीय कला का साक्षात् उदाहरण है। प्रारम्भिक जीवन में वे पढ़ाई के लिए पुस्तकों तक पहुँच पाने में कठिनाई झेलती थीं। परन्तु उन्होंने कभी शिकायत नहीं की; हर छोटी-बड़ी परिस्थिति को अनुभव के रूप में ग्रहण किया। जब वे विदेश में प्रशिक्षण लेने गईं, तो वहाँ के उपकरणों को गहन निरीक्षण और विनम्र प्रश्नों के माध्यम से समझा। विदेश से लौटकर उन्होंने भारत में उन्हीं उपकरणों को स्वदेशी तकनीक से तैयार किया, जिससे देश को विदेशी आयात पर निर्भर नहीं रहना पड़ा। उन्होंने कभी यश या पुरस्कार की इच्छा नहीं की, बल्कि हर प्रयोग को नये ज्ञान के अवसर के रूप में स्वीकार किया। उनकी इस सरलता और निष्ठा ने उन्हें 'भारत की मौसम-विज्ञान की रीढ़' बना दिया।

इन तीन सूत्रों – जिज्ञासा, आन्तरिक निष्ठा और विनम्रता – को यदि युवा अपने आचरण में उतार लें, तो जीवन केवल सफल ही नहीं, बल्कि नैतिक, उज्ज्वल और आत्मविश्वास से परिपूर्ण होगा। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

चौदहवाँ अध्याय (१४/७)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १४वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

संसार में हम जो चाहते हैं, वह भी होता है और जो नहीं चाहते, वह भी घटता ही है। इस पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं है। पर वह पुरुष दोनों ही स्थितियों में अपने मन को सन्तुलित बनाकर रखता है। तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः - उसकी निन्दा हो रही है या संस्तुति हो रही है, इन दोनों स्थितियों में वह सम रहता है। अन्यथा साधारण व्यक्ति के जीवन में जब उसकी स्तुति होती है, तो वह कितना फूल जाता है और जब निन्दा होती है, तो चिढ़ जाता है। पर यहाँ पर वर्णित गुणातीत व्यक्ति इन सबमें अपने आपको जरा भी विचलित नहीं होने देता। जैसा भगवान बुद्ध के जीवन में आता है कि एक किसी ने उन्हें बहुत-सी गालियाँ दीं। पर भगवान

बुद्ध विचलित नहीं हुए। शान्त बने रहे। बाद में शिष्य ने पूछा, 'भन्ते, उसने इतनी गालियाँ दीं, आपने कुछ नहीं कहा, आप जरा भी विचलित नहीं हुए। यह बड़ा विलक्षण है।' महात्मा बुद्ध ने कहा कि तुम्हें मैं कोई चीज दूँ और तुम उसे न लो, तो वस्तु किसके पास रहेगी? उसने उत्तर दिया, आप ही के पास। बुद्ध ने कहा कि उसने गालियाँ मुझे दीं और मैंने नहीं लीं, तो वे गालियाँ किसके पास में हैं? उत्तर आया उसी के पास हैं, जिसने गालियाँ दीं। इस प्रसंग में बुद्ध का दृष्टिकोण ध्यान देने योग्य है। उसके बाद प्रभु कहते हैं –

गुणातीत व्यक्ति का व्यवहार

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।२५।।

मानापमानयोः तुल्यः (जो मान और अपमान में सम है) मित्रारिपक्षयोः तुल्यः (मित्र और वैरी के पक्ष में सम है) सर्वारम्भपरित्यागी (कर्तापन के अभिमान से रहित है) सः गुणातीतः उच्यते (वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है)।

"जो मान और अपमान में सम है, मित्र और वैरी के पक्ष में सम है, कर्तापन के अभिमान से रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।"

यहाँ पर लग सकता है कि निन्दा-स्तुति तो कह दी। अब यहाँ मान-अपमान की यह क्या बात कह दी? यह तो पुनरावृत्ति ही हो गयी। यहाँ तात्पर्य यह है कि ये दोनों अलग-अलग हैं। निन्दा और स्तुति वाणी के द्वारा होती है। पर मान और अपमान के लिए वाणी की आवश्यकता नहीं है। किसी ने एक विशेष भाव-भंगिमा बना ली, तो उसी से मान-अपमान हो जाता है। फिर बोलने की भी जरुरत नहीं होती है। आपने किसी से कुछ कहा और उसने अपना मुँह फेर लिया। आपका कितना बड़ा अपमान हो गया! यहाँ पर उसने शब्दों से तो आपका अपमान नहीं किया, परन्तु उसने हाव-भाव ऐसा प्रदर्शित किया, जिससे आपके हृदय पर चोट पहुँची। मान और अपमान के लिए वाणी की अपेक्षा नहीं होती। अपनी क्रिया से ही मान-अपमान की स्थिति बन जाती है। परन्तु निन्दा और स्तुति वाणी के सहारे ही होती है। इसीलिए इन दोनों को अलग-अलग किया गया है। यहाँ कहा गया है कि दोनों ही अवस्थाओं में समता पाई जाती है। कोई शब्दों से निन्दा या स्तुति करे अथवा हाव-भाव से मान

या अपमान करे। वह पुरुष सम बना रहता है। फिर कहा, मित्र और शत्रु में भी वह उदासीन बना रहता है। उदासीन का अर्थ है कि वह किसी का पक्ष नहीं लेता। तात्पर्य यह कि वह मित्र या शत्रु के रूप में किसी को देखता नहीं है। अर्थात् जो गुणातीत हो चुका है, जिसकी इतनी दृढ़ आस्था इसमें हो गई है कि मैं इन गुणों से परे हूँ, मैं साक्षी हूँ, मैं द्रष्टा हूँ और गुण गुणों में ही बरत रहे हैं। भगवान यहाँ कहते हैं, केवल उसी के द्वारा ऐसी क्रियाएँ सम्भव होती हैं। यह हुए अर्जुन द्वारा पूछे गए तीन प्रश्नों के उत्तर। अर्जुन ने पूछा था कि जो गुणातीत हो गया है, उसके लक्षण कैसे होते हैं? हम अपने जीवन के साथ इन लक्षणों का मिलान करें। इसी उद्देश्य से यह बात बताई। फिर अर्जुन का दूसरा प्रश्न था कि वह वर्तन किस प्रकार करता है? व्यवहार किस प्रकार करता है? यह किसके लिये है? दूसरे को पहचानने के लिए हैं। मैं अपनी जाँच करना चाहूँ, तो लक्षणों की आवश्यकता होती है। पर दूसरे की जाँच करना चाहूँ, तो वह व्यवहार किस प्रकार करता है, इसको जानने की आवश्यकता है। अर्जुन ने तीसरा प्रश्न पूछा था कि व्यक्ति गुणातीत अवस्था कैसे पा सकता है? इन दो श्लोकों में यही बात बताई गयी है। उसका उपाय प्रभु श्रीकृष्ण बताते हैं –

अनन्य भक्ति भी गुणों से पार जाने का उपाय

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।२६।।

च यः (और जो पुरुष) अव्यभिचारेण भक्तियोगेन माम् सेवते (अनन्य भक्तियोग के द्वारा मुझको भजता है) सः एतान् गुणान् समतीत्य (वह इन गुणों को भली प्रकार लाँघकर) ब्रह्मभूयाय कल्पते (ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य बन जाता है)।

''जो पुरुष अनन्य भक्तियोग के द्वारा मुझको भजता है, वह इन गुणों को भली प्रकार लाँघकर ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य बन जाता है।''

जो कोई अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मेरी सेवा करता है। मेरी उपासना करता है, वह गुणों को पार कर जाता है । अव्यभिचारिणी भक्ति अर्थात् अविचलित भक्ति। जिस भक्ति में विचलन नहीं है, ऐसी निष्ठा और भक्ति के साथ जो मेरी सेवा करता है, वह गुणों को पार कर जाता है। ऐसा साधक ब्रह्मस्वरूपता को प्राप्त करता है। ईश्वर को पाना ही ब्रह्मस्वरूपता को पाना है। यहाँ प्रभु ने भक्तियोग को एक उपाय के रूप में वर्णित किया है। फिर कहा –

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।।२७।।

हि अव्ययस्य ब्रह्मण: (क्योंकि अविनाशी परब्रह्म का) च अमृतस्य च शाश्वतस्य धर्मस्य (और अमृत का तथा नित्य धर्म का) च ऐकान्तिकस्य सुखस्य (और अखण्ड आनन्द का) प्रतिष्ठा अहम् (आश्रय मैं)।

''क्योंकि अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का और अखण्ड आनन्द का आश्रय मैं ही हूँ।''

श्रीकृष्ण कहते हैं कि ब्रह्म ही इन सबकी प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा अर्थात् ब्रह्म ही आधार है। ब्रह्म किसका-किसका आधार है? **अमृतस्य अव्ययस्य च** – अमृत का और अव्यय का आधार है अर्थात् जिसका कभी क्षरण नहीं होता, उसका आधार है। शाश्वत का भी वही तात्पर्य है। पर इनमें तनिक-तनिक अन्तर है। अमृत अर्थात् जिसमें कहीं पर भी मृत्यु नहीं हो। अव्यय अर्थात् जिसमें अंग नहीं है। क्योंकि अंग होने से ही उसका क्षरण अनिवार्य होता है। शाश्वत अर्थात् जो सदा ही विद्यमान है। उदाहरण के लिए हिमालय को ही लीजिए। एक समय हिमालय नहीं था। एक समय हिमालय है। हिमालय बना तो हुआ है, वह बहुत दिनों तक टिक सकता है, पर शाश्वत नहीं है। उसमें निरन्तर क्षरण होता रहता है। उसके अंग-प्रत्यंग टूट रहे हैं, कट रहे हैं। हिमालय में व्यय होता है, वह अव्यय नहीं है। तो यहाँ पर यह कहा गया कि वह (ब्रह्म) अमृत है, मानो उसमें नाशवानता नहीं है। उसमें क्षरण नहीं होता है, वह चिरकाल से है। अभी है, ऐसा नहीं। शाश्वतकाल से वह सदा बना हुआ है। धर्मस्य सुखस्य एकान्तिकस्य च – तो ऐसे एकान्तिक सुख का, एकान्तिक धर्म का आधार कौन है? ब्रह्म है। मैं कौन हूँ? मैं भी वही ब्रह्म हूँ। ऐसे आत्यन्तिक सुख का, आत्यन्तिक धर्म का, शाश्वत धर्म का, अव्यय धर्म का, अमृतस्वरूप धर्म का यह ब्रह्म ही आधार है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वे ही इन सबके आधार हैं। इसलिए जो अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मेरी सेवा करता है, वह मुझे ही प्राप्त करता है। इस प्रकार वह तीनों गुणों को पार करने में समर्थ होता है। इस प्रकार यह गुणत्रयविभागयोग नामक अध्याय समाप्त होता है। **(क्रमशः)**

भजन एवं कविता

ठाकुर के संग खेलूँ होली

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

ठाकुर के संग खेलूँ होली मन मेरा हरषाया ।
भक्ति-भाव की पिचकारी से, ठाकुर को नहलाया ।।
भजन गीत का रंग लिया मैं, सुर-संगीत मिलाया ।
अपने भावों की वीणा से, अनहद-नाद जगाया ।।
काम-क्रोध के अन्तर रिपु को, होली-अग्नि जलाया ।
जीवन के अवगुण से मेरा, अब छुटा है साया ।।
ठाकुर की किरणों को पाकर, प्रेम उदधि लहराया ।
तमोभाव का नाश हुआ है, सत्भाव है छाया ।।

होली खेलत बाल गोपाल

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

गोपिन संग लिये, होली खेलत बाल गोपाल ।।
राधा-ललिता पकड़न धावत, भागत नन्द के लाल ।
कबहूँ अधर धरि वंशी बजावत, कबहुँक ठोकत ताल ।।
गोपिन संग लिए, होली खेलत बाल गोपाल...

कबहूँ जमुन-जल कूदि पड़त है, कबहुँ फुलावत गाल ।
गोपीजन मारत पिचकारी, मुख पर मलत गुलाल ।।
गोपिन संग लिये, होली खेलत बाल गोपाल ...

कान्हा के कछु जुगत चलत नहीं, खीझत करत गुदाल।
सब सखियन मिलि ताली बजावत, नाचत ग्वालन बाल ।।
गोपिन संग लिये, होली खेलत बाल गोपाल ...

जाकर रूप सिद्ध-मुनि ध्यावत, पड़ि गयो माया-जाल।
शिव-ब्रह्मा जाकर यश गावत, ताकर ऐसो हाल।।
गोपिन संग लिये, होली खेलत बाल गोपाल ...

ऊषा मधु घट लेकर आयी

रामबरन सिंह 'करुण'

ऊषा मधु घट लेकर आयी ।
नव-गन्ध सृजन-रस लिये अंक,
अति धवल-वात, न कहीं पंक,
स्वच्छन्द आ रही, वह निःशंक,
जन-मन सन्देश दे मन भायी ।।
ऊषा मधु ...
उपवन कलिका को, मृदुल हास,
खग-मृग की छीनी, रही त्रास,
योगी जन की यह नई आश,
जन नव आभा लेकर छायी ।।
ऊषा मधु ...
तम हटा व्योम निर्झर लाली,
हर गली नहीं होगी खाली,
आयेगा अभी अंशुमाली,
भर ले नीरव मधुरस लायी ।।
ऊषा मधु ...

अपने अपने रंग...

विश्वम्भर व्यग्र

सबके अपने-अपने रंग हैं, सबके अपने-अपने ढंग हैं ।
वह अकेला खड़ा वहाँ पर, इसके देखो कितने संग हैं।।
रंग के रंग में रंग रहे सारे, चेहरे लग रहे न्यारे-न्यारे ।
थाप चंग पर गा रहे होरी, रंगन के बह रहे परनारे ।।
भेद-भाव तनाव मिटाती, घर-घर में खुशियाँ लाती ।
फागुन की शक्ल में होली, महीनों पहले ठाठ जमाती ।।
सब पर उच्छृंखलता छाई, कर रहे हैं मन की भरपाई ।
लाल हरे पीले का संगम, भर रहा सब में तरुणाई ।।
द्वेष की होली जलाकर, प्रेम का प्रहलाद बचाकर ।
भूल जाएँ सब बीती बातें, आपस में अबीर लगाकर ।।
हिलमिल करके सभी मनाएँ, गले मिलें गुलाल लगाएँ ।
होली हो लें संग हमारे, रंगोली जीवन बन जाए ।

श्रीरामकृष्ण-गीता (५६)

(द्वादश अध्याय १२/४)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

यथा भुजङ्गमं दृष्ट्वा वदन्ति प्रायशो जनाः।
मनसे त्वं मुखं गृह पुच्छं मातः प्रदर्शय।।३८।।

– जैसे साँप देखने पर लोग प्रायः ही कहते हैं, हे माँ मनसा! तुम अपना मुख छिपाकर रखो और पूँछ दिखाओ।

तथैव युवतीं नारीं दृष्टिगोचरमागताम्।
तां मातरिति सम्बोध्य विदधीत नमस्कृतिम्।।३९।।

– वैसे ही युवती नारी को देखकर उन्हें 'माँ' कहकर प्रणाम करना चाहिए।

विनिवृत्याननात्तस्याः पादौ चैवावलोकयेत् ।
ततो न पतनाशंका नापि तत्र प्रलोभनम्।।४०।।

–उनलोगों के मुख को न देखकर चरणों को ही देखना चाहिये। इससे प्रलोभन और पतन का भय नहीं रहेगा।

विद्याशक्तिरविद्या वा जानीयुः सकलाङ्गनाम्।
रूपमानन्दमय्या हि भक्तसन्न्यासिसाधवः।।४१।।

– विद्याशक्ति हो या अविद्या शक्ति हो, साधु, संन्यासी और भक्त को सभी नारियों को माँ आनन्दमयी का रूप समझना चाहिए।

विजने युवतीं दृष्ट्वा मातेति तां विचिन्तयन्।
व्रजति योऽविकारी स त्यागी प्रकृत उच्यते।।४२।।

– जो अत्यन्त निर्जन स्थान में युवती नारी को देखकर उन्हें मातृभाव से चिन्तन करते हुए चला जाये, वही ठीक-ठीक त्यागी कहा जाता है।

तिष्ठन्नुत सभामध्ये त्यागिनां वेशवासितः।
तादृशः पुरुषो नैव त्यागी प्रकृत उच्यते।।४३।।

– जो लोग सभा में त्यागी वेश में सजे रहते हैं, उन्हें सच्चा त्यागी नहीं कहा जाता है।

मूलं किलाभिमानस्य नश्यदपि न नश्यति।
देहान्मूर्ध्नि विमुक्तेऽपि छागस्य कर्तनात् परम्।
तदेजते कियत्कालमपमूर्ध-कलेवरम्।।४४।।

– अहंकार का जड़ मरने पर भी नहीं मरता, जैसे बकरे को काट देने पर, उसका सिर धड़ से अलग कर देने पर भी वह कुछ देर तक हिलता रहता है।

पूर्णाभिमानशून्यत्वं दुःखलभ्यमशेषतः
पलाण्डुं लसुनं पिष्ट्वा कस्मिंश्चेद्भाजने धृतम्।।४५।।
यथेदं शतधौतेन तद्गन्धं न विमुञ्चति।
लवाभिमानशेषस्तु किमपि ह्यवशिष्यते।।४६।।

– पूर्ण रूप से अभिमान शून्य होना कठिन है। जैसे प्याज-लहसून को छीलकर किसी बर्तन में रखने पर उस बर्तन को सौ बार धोने पर भी उसका दुर्गन्ध किसी प्रकार भी नहीं जाता है, वैसे ही अभिमान कुछ न कुछ रह ही जाता है।

यथार्थं किं विजानासि त्यागिसंन्यासि-लक्षणम्।
कामिनी-कांचनासंगं ते न कुर्य्युः कथञ्चन।।४७।।

– ठीक-ठीक संन्यासी या त्यागी का लक्षण कैसा है, जानते हो? वे लोग किसी प्रकार से कामिनी-कांचन का स्पर्श नहीं करेंगे।

कामिनीसहवासस्य बोधः स्वप्नेऽपि चेद्भवेत्।
तस्माद्वा स्खलितं बीजमर्थासक्तिश्च जायते।।
साधनानि प्रणश्यन्ति भजनान्यखिलान्यपि।।४८।।

– यहाँ तक कि स्वप्न में भी यदि कामिनी-सहवास का बोध हो एवं उससे वीर्य स्खलित हो, या धन के प्रति आसक्ति उदित हो, तो इतने दिनों का साधन-भजन सब नष्ट हो जाता है।

भगवान् कल्पवृक्षोऽयं यो वै यदेव वाञ्छति।
तत्सकाशं समासीनस्तदेव लभते ध्रुवम्।।४९।।

– भगवान कल्पतरु हैं। उनसे जो व्यक्ति जो कुछ प्रार्थना करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है।

साधन-भजनैस्तस्माच्छुद्धं यदा मनो भवेत्।
कुर्वीत कामनात्यागं कथं तत् विद्धि यत्नतः।।५०।।

– इसलिए साधन-भजन द्वारा जब मन शुद्ध हो जाता है, तब बहुत सावधानी से कामनाओं का त्याग करना चाहिए। जानते हो कैसे? **(क्रमशः)**

रामनवमी-विशेष

भगवान श्रीराम का उच्चतम आदर्श

गौरी शंकर वैश्य विनम्र, लखनऊ

युगधर्म के अनुसार त्रेतायुग में श्रीराम का एक अलौकिक अवतार हुआ, जिनके उच्चतम आदर्श और मर्यादित आचरण के कारण उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान के रूप में मान्यता मिली। हजारों-लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी उस अप्रतिम चरित्र को महानता की पराकाष्ठा प्राप्त है। वे आज भी जन-जन के परम आराध्य हैं। प्रभु श्रीराम अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ और उनकी बड़ी रानी कौशल्या के पुत्र थे।

श्रीराम के अवतरण को कुछ लोग साधारण मनुष्य की भाँति जन्म लेना, कुछ प्रकट होना और कुछ लोग अवतार मानते हैं। श्रीरामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ने प्रभु के इस धराधाम पर आने के तीनों रूपों को मान्यता दी है। नरनाट्यलीला की दृष्टि से भगवान श्रीराम चैत्र मास की नवमी तिथि को मध्याह्न में अवतरित हुए –

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी।

तथा

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

इससे स्पष्ट है कि भगवान श्रीराम के अवतार लेने का कोई एक कारण नहीं था। भगवान राम को अत्याचारी रावण का वध करना ही एकमात्र हेतु नहीं था, अपितु उनका धरती पर आगमन भक्तों के कल्याण के लिये भी था।

कोई भी महापुरुष इस धराधाम पर आकर अपने आचरण एवं क्रियाकलापों द्वारा जो मार्ग अपनाता है, वही मार्ग अगली पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय हो जाता है। भगवान श्रीराम एक आदर्श पुत्र, एक आदर्श भाई, एक आदर्श शिष्य, एक आदर्श पति, आदर्श नागरिक, एक आदर्श शासक, एक आदर्श तपस्वी, एक आदर्श मानव थे। उनकी सभी भूमिकाओं में आदर्श की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। कुछ उद्धरण देखें।

भगवान राम को वन से वापस अयोध्या लौट चलने हेतु प्रिय भरत भाई ने बहुत अनुनय-विनय किया, किन्तु भगवान राम ने राजधर्म पालन करना उचित समझा। उन्होंने भरत को अयोध्या लौट जाने का संकेत दिया और वे मधुर वचन बोले –

मुखिया मुख सो चाहिए, खानपान कहुँ एक।
पालइ पोसइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक।।

अर्थात् भरत तुम सब प्रकार से योग्य हो, परन्तु मुनि, माता, सचिव और स्वामी की सीख लेकर ही चलना। देश, राजकोष, परिवार, पृथ्वी, प्रजा और राजधानी की रक्षा करना तुम्हारा दायित्व है।

वनवास की अवधि में भगवान राम, सीता माता के साथ अत्रि मुनि के आश्रम गए। वहाँ से विदा होते समय मुनि-पत्नी सती अनुसूया जी ने सीता जी को आदर्श नारी का सम्मान देकर जो कुछ संदेश दिया, वह सारे संसार की स्त्रियों के लिये अनुकरणीय है –

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परिखिअहि चारी।। ३/४/७

चित्रकूट छोड़ते ही राम जी ने आराम त्याग दिया, जंगल-जंगल घूमते रहे। फिर दण्डकारण्य में पर्णकुटी बनाई। उन्होंने कुटी के बाहर देखा कि हड्डियों का ढेर लगा है। एक ऋषि ने उन्हें बताया कि मानव-भक्षी निशाचर यहाँ तपस्वियों को मारकर खा जाते हैं, यह ढेर उन्हीं की हड्डियों का है। ऐसा हृदयविदारक दृश्य राम ने पहले कभी नहीं देखा। उन्होंने तुरन्त प्रतिज्ञा की –

निसिचर हीन करुउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। ३/९

आज पुन: भारत सहित विश्व के अनेक देश आतंकवाद की समस्या से जूझ रहे हैं। ये आतंकवादी ही आज के निशाचर हैं। प्रभु राम की प्रतिज्ञा सभी देशवासियों को प्रेरित करती है कि आतंकवाद का समूल नाश किया जाए। श्रीराम ने लंका जाने के लिए बाँध बनाने के लिए समुद्र से विनती की, किन्तु जब वह शठ नहीं माना, तब इस प्रसंग में यही कहा था –

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति। ५/५७

अहंकारी रावण ने सीता माता का छल से हरण कर लिया। तब श्रीराम अवतारी रूप में आ गए। रावण प्रकाण्ड पण्डित, बुद्धिमान, शक्तिशाली और वेदज्ञ था, किन्तु अहंकारी होने के कारण उसका चरित्र नहीं सुधरा। उसके

चाटुकार मंत्रियों ने उसे भर रखा था कि तुम परम विजेता हो, ये रीछ-वानर हमारा भोजन बनकर यहाँ आ रहे हैं। जब शासक (मन्त्रीगण), वैद्य और गुरु सही स्थिति से अवगत नहीं कराते और भय या चाटुकारितावश बढ़ा-चढ़ाकर झूठी सूचनाएँ प्रस्तुत करते हैं, तब राज्य, रोगी और धर्म का विनाश सुनिश्चित है। इस सन्दर्भ में श्रीराम के वचन अनुकरणीय हैं –

सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धर्म, तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास।।५/३७

भगवान राम के प्रमुखत: तीन मित्र थे। निषादराज सुग्रीव और विभीषण। मित्रता की सारी विधाओं के पालन एवं क्रियान्वयन में कोई भी चरित्र इनकी तुलना नहीं कर सकता। सुग्रीव को जब हनुमान जी के माध्यम से मित्र बनाते हैं, तो उसकी सारी परिस्थितियों को अनुकूल करके वे मात्र इतनी ही सुग्रीव से आशा रखते हैं –

अंगद सहित करहु तुम राजू।
संतत हृदय धरेहु मम काजू।

लोकापवाद में रावण शत्रु था, फिर भी अंगद जी को उसके यहाँ दूत बनाकर भेजने का प्रस्ताव आया, तो श्रीराम ने निर्देशित किया कि अपना काम हो जाए और शत्रु का कल्याण हो, बस इतनी बातचीत उससे करनी है –

काजु हमारा तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई।। ६/१६/८

शत्रु रावण के हित की भी बात सोचना प्रभु श्रीराम के अतिरक्ति अन्यत्र एवं सर्वथा दुर्लभ है।

निशाचर रावण का वध करने के बाद वह सोने की लंका, जो रावण ने दसों मस्तक चढ़ाने के बाद शिव से प्राप्त की थी, प्रभु श्रीराम उसके भाई विभीषण को नि:संकोच दे देते हैं। उनके मन में लेश मात्र भी लोभ-लालच नहीं। भगवान श्रीराम जैसा महान व्यक्तित्व इस मानव सृष्टि में दूसरा कोई नहीं दिखता –

जो संपति सिव रावनहि, दीन्ह दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा विभीषनहि, सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।

रामराज्य की अवधारणा कोई कपोल कल्पना नहीं है, अपितु यथार्थ का प्रतिपादन है। राज्यारोहण के पश्चात् भगवान श्रीराघवेन्द्र का राष्ट्र हेतु जो सम्बोधन होता है, वह कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रतीक है। उन्होंने उद्घोषित किया था – यदि आप में से किसी को लगे कि मैंने कोई अनीति या अनुचित बात कही है, तो निर्भय होकर मुझे तुरन्त टोक दें –

जौं अनीति कछु भाषौं भाई।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराइ।। ७/४२/६

इस प्रकार श्रीराम राजा होते हुए भी स्वच्छन्द स्वेच्छाचारी नहीं हैं। आम नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है, जिसमें उसके सर्वांगीण विकास और राज्य का हित निहित हो।

रामराज्य में एक ऐसे राज्य की स्थापना की संकल्पना है, जहाँ किसी को दैहिक, दैविक और भौतिक व्याधि भी न हो –

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा।। ७/२०/१

वे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के रूप में एक आदर्श स्थापित करते हैं। श्रीराम का राष्ट्र भारत एवं जन्मभूमि अयोध्या के प्रति सम्मान भाव भी अत्यन्त अनुकरणीय है। वे अपने मित्रों से कहते हैं –

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।। ७/३/५

भगवान श्रीराम का इस धराधाम पर आगमन 'सर्वजन-हिताय सर्वजन-सुखाय' को चरितार्थ करने के लिये हुआ। वे वनवासी, आदिवासी, कोल, किरात, भील, यक्ष, किन्नर, पशु-पक्षी आदि सभी से समान भाव से प्रेम करते हैं। इस प्रकार श्रीराम का चरित्र लोकमत या वेदमत, चाहे विद्वान या ग्रामीणजन; सभी को प्रभावित किए बिना नहीं रहता है। श्रीराम में आदर्श राजा के सभी गुण यथा – शास्त्रसम्मत निर्दिष्ट मार्ग का अनुगमन, धर्मशील, प्रजापालक ,सज्जन, उदार, स्वभाव से दृढ़, दानशील, क्षमाशील, राष्ट्र भक्त आदि विद्यमान हैं। प्रियजन, पुरजन, गुरुजन सबके प्रति राम का व्यवहार आदर्श एवं धर्म के अनुकूल है। जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक और मध्य में सभी चरण रामनाम के साथ ही पूर्ण होते हैं। अभिवादन में राम-राम कार्य के प्रारम्भ और अन्त में 'जय श्रीराम' तथा जीवन के अन्तिम समय 'रामनाम सत्य' जैसे उद्बोधन इसके जीवन्त उदाहरण हैं।

वर्तमान में भगवान श्रीराम की प्रासंगिकता पुन: स्थापित हो रही है। जन्मभूमि अयोध्या में लगभग ५०० वर्ष पूर्व मुगल आक्रान्ताओं द्वारा प्राचीन श्रीराम मंदिर ध्वस्त कर

शेष भाग पृष्ठ १३६ पर

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो अनुपम गुरु श्रीमाँ, नरेन्द्र को, सब साधन-फल दान करैं।
जो पति में माता-पिता-इष्ट-गुरु, सखा सभी का ध्यान करैं।
जो अतुल शिष्य गुरु-संदेशों का, गूढ़ मर्म साकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१५।।
जो ईश्वरदर्शन व्याकुलता या, भक्ति-भाव उपदेश करैं।
जो जप-तप-त्याग-तितिक्षा, सेवा का आचरण विशेष करैं।
जो नर-नारायण सेवा में ही, ईश्वर-साक्षात्कार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१६।।
जो स्वयं पूर्ण अवतार किन्तु, अभिमान-शून्य आचार करैं।
जो जगज्जननि सारदा भक्तिमय, सेवा-व्रत साकार करैं।
जो मूर्त महेश्वर रूप सभी में, दिव्य-भाव-संचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१७।।
जो मथुरनाथ के वंश-पुरोहित, के अपराध को माफ करैं।
जो मातृभाव से भोज्य खिलाकर, थाली-बर्तन साफ करैं।
जो जनगण-मन-उन्नायक, सब भय-कायरता परिहार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।१८।।
जो निखिल विश्व को दिव्य प्रेम की, भावराशि का दान करैं।
जो जगप्रपंच में भक्त-अभक्त, सभी को अभय प्रदान करैं।
जो मानव-चिरकल्याण हेतु, उन्नत चरित्र तैयार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१९।।
जो कंचन कामासक्त जनों को, शान्ति वारि का दान करैं,
जो मातृभाव-प्रेमाकर्षण से, ही दिव्यता प्रदान करैं।
जो प्रबल कर्म-तत्परता में, आत्मा-जयगान उदार करैं,
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।२०।।
जो द्विजकुल-गर्व-विनाश हेतु, मेहतर-शौचालय साफ करैं।
जो मातृस्नेहमय-दरश-परश से, अधमाधम को माफ करैं।
जो परिव्राजक अस्पृश्य से भी, उच्छिष्ट चिलम स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।२१।।
जो भक्त-अभक्त सभी के संग, ईश्वर-कीर्तन-गुणगान करैं।
जो सबको निज संतान भाव से, मातृ-स्नेह का दान करैं।
जो धर्मसाधनामय सेवा को, मुक्ति-द्वार स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।२२।।
जो विविध पंथ को 'जितने मत, उतने ही पथ' स्वीकार करैं।
जो जगप्रपंच-आसक्त जनों से, स्नेह-दुलार अपार करैं।
जो अन्तर्हित दिव्यता के, प्रकटन का धर्म प्रचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।२३।।
जो भक्त-मिलन-उत्कंठा में, आकुल-क्रंदन बहुबार करैं।
जो निश्छल प्रेम-वारि-सिंचन से, शीतल प्राण अपार करैं।
जो विश्ववन्द्य होकर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।२४।।
जो भक्ति-विवेक-विराग-कर्ममय, सरल जीवनाचार करैं।
जो पापी-पुण्यात्मा सबको, संतान-भाव स्वीकार करैं।
जो मानवता-दुखमोचन का, आवाहन बारम्बार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।२५।।
जो नारी-पुरुष सभी गुरु का , शिष्यत्व सहज स्वीकार करैं।
जो जातिभेदविरहित स्वभाव से, मातृ सुलभ आचार करैं।
जो राजा-रंक सभी का ही, आतिथ्य सहज स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।२६।।
जो स्वल्पमात्र ही साक्षर रह, मानवता का उद्धार करैं।
जो अनुपम निर्मल भावराशि, से ही संवाद अपार करैं।
जो जगकल्याण-साधना में, प्रतिभा-उत्सर्ग उदार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।२७।।
जो धार्मिक-नैतिक-अनुशासन को, सहज भाव स्वीकार करैं।
जो दिव्य प्रेम, वात्सल्यभाव से, मिश्रित जगव्यवहार करैं।
जो शोषित-वंचित सबको ही, निज कंठहार स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।२८।।
जो दिव्यप्रेम से प्राणिमात्र में, शान्ति-सुधा का दान करैं।
जो सरल, क्षमाशीला स्वभाव से, शीतल सब मन प्राण करैं।
जो दिव्यप्रेममय भाव समन्वय, का आह्वान उदार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।२९।।
जो लोकातीत त्यागिवर, जगकल्याण-कर्म-आचार करैं।
जो मातृसुलभ सन्तानवत्सला, सब अवगुण परिहार करैं।
जो संन्यासी लेकिन परदुख-कातर हो, जग-उपकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।३०।।

सत्ता एक, भिन्न अभिधान

राजेश सरकार

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, कला संकाय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ.प्र.)

भारतीय सनातन-संस्कृति अपनी सामासिक एवं बहुत्व में एकत्व-दर्शन की प्रवृत्ति के कारण विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित और प्रशंसित रही है। सह-अस्तित्व, पारस्परिक सहिष्णुता, एवं मानवीय मूल्य आदि उदात्त गुणों के कारण यह संस्कृति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिक लोकप्रिय है। उपास्य एवं उपासना-पद्धति के चयन की जिस प्रकार की असीम स्वाधीनता इस सनातन-संस्कृति में है, उसकी तुलना किसी अन्य संस्कृति-सभ्यता से नहीं हो सकती है। सनातन-हिन्दू-परम्परा का शास्त्र एवं लोकपक्ष उभय इस वाद में विश्वास करता है कि सत्ता एक ही है, उसके अभिधान भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इन भिन्न-भिन्न अभिधानों से एकमेवाद्वितीय सत्ता ही अभिधेय है। भिन्न-भिन्न अभिधानों से उपास्य-सत्ता की भिन्नता का अभिप्राय कथमपि नहीं है। एक ही सत्ता कणकण में भासित हो रही है, यही सनातन-परम्परा का मूल मन्त्र है। एक ही देवता सभी जीवों में रम रहा है –

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः।
साक्षी चेतन केवलो निर्गुणश्च।।[१]

अर्थात् समस्त प्राणियों में स्थित एक देव है, वह सर्वव्यापक, समस्त भूतों का अन्तरात्मा, कर्मों का अधिष्ठाता, समस्त प्राणियों में बसा हुआ, सबका साक्षी, सबको चेतना प्रदान करनेवाला, शुद्ध और निर्गुण है। सत्ता निर्विवाद रूप से एक ही है, उसमें किसी भी प्रकार का द्वित्व नहीं है। वेदों के ज्ञानकाण्डात्मक भाग उपनिषदों में स्थान-स्थान पर उस परमसत्ता के एकत्व की स्वीकृति प्राप्त होती है। यथा त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् (३/३) एवं पैंगलोपनिषद् (१/१) में उद्धृत है – **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'**– अर्थात् ब्रह्म एक एवं अद्वितीय है। इसी प्रकार उस सत्ता में किसी भी प्रकार का द्वित्व नहीं है, इसकी उद्घोषणा करते हुये उपनिषद् कहते हैं – **नेह नानास्ति किञ्चन**[२] – अर्थात् उसमें नानात्व नहीं है। इसे कठोपनिषद् (२/१/११) में विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया गया है –

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।।

– अर्थात् मन से ही यह तत्त्व प्राप्त करने योग्य है। इस ब्रह्मतत्त्व में नाना कुछ भी नहीं है। जो पुरुष इसमें नानात्व-सा देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को जाता है।

कठोपनिषद् के ही एक अन्य मन्त्र में उस परमसत्ता के एकत्व के विषय में कुछ इस प्रकार कहा गया है-

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा,
एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।[३]

– अर्थात् जो एक, सबको अपने अधीन रखनेवाला और सम्पूर्ण भूतों की अन्तरात्मा अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्मदेव को जो धीर (विवेकवान्) पुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्यसुख प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं।

इस मन्त्र से उस अक्षर अविनाशी ब्रह्म के एकत्व का सिद्धान्त अभिव्यक्त होता है। इस मन्त्र के शाङ्कर भाष्य में उस परमसत्ता के एकत्व का स्पष्ट प्रतिपादन है – '**स हि परमेश्वरः सर्वगतः स्वतन्त्र एको न तत्समोऽभ्यधिको वान्योऽस्ति।**' इस मन्त्र से यह भी ज्ञात होता है कि वह परम सत्ता अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेती है। नित्य, एकरस विशुद्ध-विज्ञान-स्वरूप आत्मा स्वयं को नाम-रूप आदि अशुद्ध उपाधि-भेद के कारण अपनी सत्तामात्र से बहुधा अनेक प्रकार का कर लेता है। यह श्रुति

उस परमात्मा के एकत्व को स्पष्टतया प्रतिपादित करती है। श्रुतियों में अन्यत्र भी ये भाव अभिव्यक्त होते हैं –

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।[४]

ऋषि ने कहा – वह रूप-रूप के प्रतिरूप हो गया। ईश्वर माया से अनेक रूप प्रतीत होता है। इसके आगे भी उपनिषद् कहते हैं –

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।[५]

अर्थात् जिस प्रकार सम्पूर्ण भुवन में प्रविष्ट हुआ एक ही अग्नि प्रत्येक रूप के अनुरूप हो गया है। उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा उनके रूप के अनुरूप हो रहा है तथा उससे बाहर भी है।

श्रुतियों में कहा गया है कि जो यह कहते हैं कि उसका याग करो, उसका याग करो। इस प्रकार एक-एक देवता का याग बतलातें हैं, वह इसी की 'विसृष्टि' बिखरा हुआ अर्थात् व्यष्टिरूप है, निःसन्देह यह ही सारे देवता है। **तद्यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः।**[६] जिस प्रकार अग्नि उस ब्रह्म से उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार अन्य देवता भी उसी के प्रकाशक हैं। इसलिये यज्ञ-यागादि में जो अग्नि, इन्द्र आदि विभिन्न देवताओं की उपासना प्राप्त होती है, वह वास्तव में उसी एक ब्रह्म की उपासना है।

भिन्न-भिन्न देवताओं में एक परमतत्त्व की अभिव्यक्ति अधोलिखित यजुर्वेदीय मन्त्र में होती है, जहाँ कहा गया है कि "वही अग्नि है, वह सूर्य है, वह वायु है, वह चन्द्रमा है, वह शुक्र अर्थात् देदीप्यमान नक्षत्र है, वह ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) है, वह जल (इन्द्र) है, वह प्रजापति (विराट्) है –

'तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।'
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः।।[७]

एक सत्ता की अनेक संज्ञा विषयिणी भावना अथर्ववेदीय मन्त्रों में भी प्राप्त होती है –

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्।
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः।[८]

अर्थात् वह (ईश्वर) धाता है, वह विधाता है, वही वायु, वही आकाश में उठा मेघ है। वही अर्यमा, वही वरुण, रुद्र और महादेव है, **वही अग्नि, सूर्य एवं महादेव है। वही अग्नि, सूर्य और महायम है।**

अथर्ववेद में ही कहा गया है कि वह सायंकाल अग्नि और वरुण होता है और प्रातःकाल उदय होता हुआ मित्र (सूर्य) होता है, वह सविता होकर अन्तरिक्ष में विचरण करता है। वह इन्द्र होकर मध्य से द्युलोक को तप्त करता है –

स वरुणः सायमग्निर्भवति
स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्।
स सविता भूत्वा अन्तरिक्षेण याति
स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम्।।[९]

यास्क ने निरुक्त दैवत काण्ड सप्तम अध्याय में शब्दों में विवेचना की है कि इस संसार के मूल में एक महत्त्वशालिनी शक्ति विद्यमान है जो निरतिशय ऐश्वर्यशालिनी होने से ईश्वर कही जाती है। वह एकमेवाद्वितीय है। उसी देवता की बहुत रूपों से स्तुति की जाती है।

महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।।[१०]

उपनिषदों में कहा गया है कि वह ब्रह्म निराकार, निर्गुण है, तथापि उपासकों के कार्य की सफलता के लिये उसके विभिन्न रूप की कल्पना की जाती है।

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्या शरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।।
रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यङ्गास्त्रादिकल्पना।
द्विचत्वारिषडष्टानामं दश द्वादश षोडश।।
अष्टदशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः।
सहस्रान्तस्तथा तासां वर्णवाहनकल्पना।
शक्तिसेनाकल्पना च ब्रह्मण्येवं हि पञ्चधा।
कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पना।।[११]

अर्थात् यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय निष्कल, अशरीर है, तथापि उपासकों के कार्य की सिद्धि के लिये ब्रह्म के विविध रूप की कल्पना की जाती है। साकार भाव को प्राप्त उन देवताओं के स्त्री-पुरुष अंग और अस्त्रादि की कल्पना की जाती है। विविध रूपों में अभिव्यक्त पञ्चदेवात्मक परब्रह्म

के अवतार विग्रह के शंख, चक्रादि से सम्पन्न चार, छह, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह, सहस्रभुज तथा वर्ण और वाहनादि की और शक्ति सेना की उद्‌भावना भक्तों के सर्वविध उत्कर्ष की भावना से है।

वे समस्त भूत के भोक्ता और अविनाशी ईश्वर ही प्रकृति से पार्थिव प्रपंच पर्यन्त अनात्मवस्तुओं में समासक्त जीवसंज्ञक भूतों का जो वास्तव आत्मा है, वह सर्वगत एवं सर्वरूप होने से सभी जीवों में सन्निहित है। वह नभचन्द्र सदृश एक होता हुआ भी जलचन्द्रतुल्य विविध परिलक्षित होता है।''

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ।।[१२]

न केवल श्रुति, अपितु लौकिक परम्परा भी इस भावना की सशक्त अभिव्यक्ति करती है। सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास धर्मग्रन्थवत् समादृत अपने अवधी महाकाव्य 'रामचरितमानस' में कहते हैं –

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।।

अभिप्राय यह है कि वह सत्ता एक ही है। ध्याता अथवा भक्त अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने हृदयदेश में उसके दर्शन करता है। वही परमात्मा तुलसी के श्रीराम हैं, तो सूर के बालकृष्ण। कभी स्वामी रामकृष्ण परमहंस के हृदय में काली के रूप में आते हैं, तो कभी समर्थ गुरु रामदास के श्रीहनुमान् हो उठते हैं।

सनातन-परम्परा के सिक्खधर्म में श्रीगुरुग्रन्थसाहिब के आरम्भिक मूल मन्त्र में उस अखण्ड सच्चिदानन्दघन परमात्मा की एकरूपता का प्रतिपादन अत्यन्त ललित एवं प्रांजल भाषा में प्राप्त होता है –

इक्क ओंकार सतनाम करता पुरख निरभऊ।
निरबैर अकाल मूरत अजूनी सैभं गुरु प्रसाद।।

अर्थात् अकालपुरुष (परमात्मा) एक है। उसके जैसा कोई अन्य नहीं है। वह सब में रस व्यापक है। वह सर्वत्र उपस्थित है। अकालपुरुष का नाम सब से सच्चा है, वह भयरहित, बैररहित कालहित मूर्ति, अयोनिज, अजन्मा है।

गुरु ग्रन्थसाहिब में ही गुरु अर्जनदेव जी महाराज इस एकता को कुछ इन शब्दों में कहते हैं –

कोई बोले राम राम कोई खुदाय।
कोई सेवे गोसैया, कोई अल्लाहे।

उपुर्यक्त सन्तों की देशज वाणी में उस परमसत्ता के एकत्व का निदर्शन प्राप्त होता है। इन सन्तों की वाणी का मूल उत्स श्रुतियाँ हैं, जो सन्तों के द्वारा जन-जन में अभिव्यक्त हुयी हैं। उस एक सत्ता के अनेक पर्याय के सम्बन्ध में अधोलिखित वैदिक ऋचा अत्यन्त प्रसिद्ध है –

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं
यमं मातरिश्वानमाहुः।।[१३]

अर्थात् उसे इन्द्र, मित्र या वरुण कहते हैं। वही आकाश में सूर्य है। वही अग्नि, यम और मातरिश्वा है। मेधावी, मनीषीजन एक ब्रह्म का अनेक रूपों में वर्णन करते हैं।

मन्त्र की तृतीय पंक्ति अत्यन्त विख्यात रही है, जिसमें कहा गया है कि मनीषीजन एक ही सत्ता का विविध रूपों में वर्णन करते हैं। इसी क्रम में कैवल्योपनिषद् में स्पष्टतया उस एक सत्ता के विविध रूपों एवं पर्यायों की चर्चा है – **'स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः सोऽक्षरः सः परमः स्वराट्। स इन्द्रः स कालाग्निः स चन्द्रमाः।'**[१४]

वही ब्रह्मा है, वही विष्णु, वही रुद्र, वही शिव है, वही अक्षर अविनाशी ब्रह्म है। वही इन्द्र, वही कालाग्नि एवं वही चन्द्रमा है। रुद्रहृदयोपनिषद् (६-७) में शिव-विष्णु का अभेद प्रस्तुत किया गया है –

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्।।
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्।।

– ''जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं, वे शंकर को नमस्कार करते हैं और जो भक्तिपूर्वक विष्णु भगवान् की अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वज अर्थात् शंकर जी की ही पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष अर्थात् भगवान् आशुतोष से द्वेष करते हैं, वे जनार्दन से ही द्वेष करते है। जो रुद्र को नहीं जानते, वे केशव को भी नहीं जानते।''

इसी प्रकार पुराण-वाङ्मय में इस एकत्व का अत्यन्त तार्किक विवेचन प्राप्त होता है। पुराणों में विभिन्न सम्प्रदायों, उपासकों, भक्तों, देवताओं एवं उनके श्रद्धोत्पादक विचारों

में एक प्रकार की समन्वयात्मक दृष्टि प्राप्त होती है। एक ही परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य आदि विभिन्न सगुण स्वरूप में प्रकट होता है। उपासकों की विभिन्नात्मक दृष्टि के कारण पुराण भी भिन्न-भिन्न देवताओं की भक्ति के पोषक हो जाते हैं। यथा स्कन्दपुराण के सृष्टि-खण्ड में कहा गया है –

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुभिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।।[१५]

एक ही सत्ता ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन त्रिविध रूपों में अभिव्यक्त होती है। उनमें किसी भी प्रकार का न्यूनाधिक्य भाव नहीं है –

क्वचिद् रुद्रः क्वचिद् ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः प्रशस्यते।
नान्येन तेषामाधिक्यं न्यूनत्वं वा कथञ्चन।।[१६]

वस्तुतः जो विष्णु है, वहीं रुद्र, जो रुद्र है, वही ब्रह्मा है। एक ही मूर्ति त्रिविध रूप में प्रकट होती है अथवा यह कहें कि एक ही सत्ता के अनेक अभिधान हैं –

यो वै विष्णुः स व वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्र–विष्णु-पितामहाः।।[१७]

यहाँ तक हमारी सनातन परम्परा में पौराणिक ग्रन्थों में देवताओं में भेद-दृष्टि की निन्दा की गयी है एवं इसे पाखण्ड तथा पाप कहा गया है। परम्परया एक श्लोक बहुधा उद्धृत किया जाता है, जिसमें कहा गया है कि पाखण्डग्रस्त प्राणी ब्रह्मा, विष्णु, महेश में भेद-दृष्टि से युक्त होकर न तो उन्हें एक जानते हैं, न एक देखते हैं –

ब्रह्माणं केशवं रुद्रं भेदभावेन मोहिताः।
पश्यन्त्येकं न जानन्ति पाखण्डोपहता जनाः।।

आचारशास्त्र के रूप में विख्यात श्रीमद्भगवद्गीता में योगिराज भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।।[१८]

अर्थात् जो-जो भक्त श्रद्धापूर्वक जिस-जिस देवता को पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उस देवता में स्थिर कर देता हूँ।

तत्त्व एक ही है, रूप-नाम भिन्न हो सकते हैं। रुचि के अनुसार व्यक्ति अपने इष्ट को निर्धारित कर लेता है। वैयाकरण शिरोमणि आचार्य भट्टोजिदीक्षित कहते हैं –

पुरारौ च मुरारौ च न भेदः पारमार्थिकः।
तथापि मामकी भक्तिश्चन्द्रचूडे प्रधावति।

अर्थात् शिव-विष्णु में किसी प्रकार का पारमार्थिक भेद नहीं है, किन्तु मेरी भक्ति शिव की ओर जाती है।

विभिन्न देवताओं को भजता हुआ भी व्यक्ति वास्तव में एक ही परमात्मा को भजता है। भले ही उसकी विधि, पद्धति आदि भिन्न हो। किन्तु उसका प्राप्तव्य एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही है। इस सन्दर्भ में उपनिषदों का सार कही जाने वाली श्रीमद्भगवद्गीता अनेक तथ्य प्रतिपादित करती है। इस विषय में अधोलिखित श्लोक द्रष्टव्य है –

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।[१९]

अर्थात् हे अर्जुन! श्रद्धा से युक्त जो भक्त अन्य देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरा ही पूजन करते हैं, किन्तु उनकी वह पूजा अविधिपूर्वक होती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि सभी अन्त में एक ही तत्त्व को प्राप्त होते हैं, भले ही उनके मार्ग भिन्न-भिन्न क्यों न हों। साधन-भेद होने पर साध्य की एकरूपता तो है ही। क्योंकि साध्य एक है, अद्वितीय है। भिन्नता उसके अभिधान में है। एक सत्ता के अभिधान भिन्न-भिन्न हैं, एक ही परमात्मा अपने भिन्न विशिष्ट गुणों के कारण विविध नामों से उच्चरित किया जाता है। यही कारण है कि अर्धनारीश्वर, विश्वरूप, शिव-विष्णु ऐक्य आदि सिद्धान्त हमारी मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य आदि विविध शास्त्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। इन विग्रहों में उस परमात्मा के एकत्व एवं नामबहुत्व का सन्देश अन्तर्हित है। हरिहर-विग्रह की संकल्पना इसी चिन्तन का परिणाम है। केरल के शबरीमला में प्रतिष्ठित भगवान् स्वामी अयप्पा हरिहरावतार ही हैं। **(अगले अंक में समाप्त)**

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्वेता ६/११, गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद् १८ **२.** कठो. २/११, बृ.उ. ४/४/१९, त्रि.म.ना.३/३, अध्यात्मो. ६३, निरालम्बो.११ **३.** कठोपनिषद् २/२/१२ **४.** बृहदारण्यक २/५/१९ **५.** कठोपनिषद् २/२/९ **६.** बृहदारण्यक. १/४/६ **७.** यजु. अ. ३२/म.१ **८.** अथर्व. १३/४/३-५ **९.** अथर्व १३/३/१३ **१०.** ७/४/८-९ **११.** श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत् १/७-१० **१२.** त्रिपुरातापिन्युपनिषद् १२ **१३.** ऋग्वेद १/१६४/४ **१४.** कैवल्योपनिषद् **१५.** स्कन्दपुराण १/१/१/१ **१६.** कूर्मपुराण **१७.** हरिवंश **१८.** श्रीमद्भगवद्गीता ७/२१ **१९.** श्रीमद्भगवद्गीता ९/२३

श्रीरामकृष्ण की अद्भुत दिव्य वाणी

स्वामी पद्माक्षानन्द
सह-सम्पादक, विवेक ज्योति,
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(गतांक का शेष भाग)

श्रीरामकृष्ण एकान्तवास की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि कभी-कभी निर्जन स्थान में जाकर ईश्वर का चिन्तन करना बहुत आवश्यक है। प्रथम अवस्था में बीच-बीच में एकान्तवास किए बिना ईश्वर में मन लगाना बड़ा कठिन है।

कैसे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं? इसका उपाय बताते हुए ठाकुर कहते हैं, ''बीच बीच में एकान्वास, उनका नाम-गुणगान और वस्तु-विचार करने से ईश्वर के दर्शन होते हैं।''

अब प्रश्न है कि क्या हमें हमेशा एकान्त में रहना होगा? यह तो हमेशा सम्भव नहीं है। इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण छोटा पेड़ का उदाहरण देते हुए कहते हैं – ''फुटपाथ के पेड़ तुमने देखे हैं? जब तक वे पौधे रहते हैं, तब तक चारों ओर से उन्हें घेरकर रखना पड़ता हैं। नहीं तो बकरे और चौपाये उन्हें चर जाते हैं। जब पेड़ मोटे हो जाते हैं, तब उन्हें घेरने की आवश्यकता नहीं रहती। तब हाथी बाँध देने पर भी पेड़ नहीं टूट सकता। तैयार पेड़ अगर बना ले सको तो फिर क्या चिन्ता है, क्या भय है? पहले विवेक प्राप्त करने की चेष्टा करो। तेल लगाकर कटहल काटो, उससे दूध नहीं चिपक सकता।'[१२]

पुन: एक दिन ब्राह्मभक्त-मण्डली को सम्बोधित करके श्रीरामकृष्ण इस प्रश्न का उत्तर देते हुये कहते हैं – ''यदि कहो, कितने दिन संसार छोड़कर निर्जन में रहें? तो इसके लिये यदि एक दिन भी इस तरह रह सको, तो वह अच्छा है, तीन दिन रहो तो और अच्छा है, अथवा बारह दिन, महीने भर, तीन महीने, सालभर, जो जितने दिन रहे सके। ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके संसार में रहने से फिर अधिक भय नहीं रहता।[१३]

श्रीरामकृष्ण मन की तुलना दूध से करते हुए एकान्तवास की आवश्यकता को बतलाते हैं – ''मन दूध की तरह है। उस मन को अगर संसाररूपी जल में रखो, तो दूध पानी से मिल जायेगा, इसीलिए दूध को निर्जन में दही बनाकर उससे मक्खन निकाला जाता है। जब निर्जन में साधना करके मन रूपी दूध से ज्ञानभक्ति रूपी मक्खन निकाल लिया जायेगा, तब वह मक्खन अनायास ही संसार-रूपी पानी में रखा जा सकता है। वह मक्खन कभी संसार-रूपी जल से मिल नहीं सकता। संसार-जल पर निर्लिप्त होकर उतराता रहता है।'[१४]

गोस्पेल Gospel शब्द का चतुर्थ अक्षर (P) है। P = Prayer and power of Attorney give to God . अर्थात् प्रार्थना या आम-मुखत्यारी ईश्वर को दो। श्रीरामकृष्ण की एक प्रमुख शिक्षा है ईश्वर से प्रार्थना करना। ईश्वर को अपना मानकर-समझकर उनसे हठ करके अपनी प्रार्थना स्वीकार करवानी चाहिए। किस प्रकार प्रार्थना करने पर ईश्वर सुनते हैं, उसे बतलाते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ''एक और उपाय है – व्याकुल होकर प्रार्थना करना। ईश्वर अपने हैं, उनसे कहना पड़ता है, 'तुम कैसे हो, दर्शन दो, दर्शन देना ही होगा, तुमने मुझे पैदा क्यों किया?' सिक्खों ने कहा था, 'ईश्वर दयामय हैं।' मैंने उनसे कहा था, 'दयामय क्यों कहूँ? उन्होंने हमें पैदा किया है, यदि वे ऐसा करें जिससे हमारा मंगल हो, तो इसमें आश्चर्य क्या है? माँ-बाप बच्चों का पालन करेंगे ही, इसमें फिर दया की क्या बात है? यह तो करना ही होगा।'' इसीलिए उन पर जबदस्ती करके उनसे प्रार्थना स्वीकार करानी होगी। वे हमारे माता-पिता हैं। लड़का यदि खाना-पीना छोड़ दे, तो माता-पिता उसके बालिग होने के तीन वर्ष पहले ही उसका हिस्सा उसे दे देते हैं। फिर जब लड़का पैसा माँगता और बार बार कहता है, 'माँ, तेरे पैरों पड़ता हूँ, मुझे दो पैसे दे दो, तो माँ हैरान होकर उसकी व्याकुलता देख पैसा फेंक ही देती है।''[१५]

ईश्वर से कैसे प्रार्थना करनी चाहिए इसकी शिक्षा जीवों को देने के लिये श्रीरामकृष्ण ईश्वर से प्रार्थना करते हैं – ''माँ, मैं तुम्हारी शरण में हूँ, शरणागत हूँ ! तुम्हारे चरण कमलों में मैंने शरण ली है। माँ, मैं देह-सुख नहीं चाहता, मान-सम्मान नहीं चाहता, अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ नहीं चाहता, केवल यह

कहता हूँ कि तुम्हारे पादपद्मों में शुद्ध भक्ति हो – निष्काम, अमला , अहेतुकी भक्ति और माँ, तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ, तुम्हारी माया के संसार के कामिनी-कांचन पर कभी प्यार न हो। माँ, तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है। मैं भजनहीन हूँ, साधनहीन हूँ, ज्ञानहीन हूँ, कृपा करके अपने श्रीपादपद्मों में मुझे भक्ति दो।''[१६]

Power of Attorney give to God – ईश्वर को आम-मुखत्यारी दे दो।

बहुधा लोग कहते हैं कि हमारी आन्तरिक इच्छा ईश्वर को प्राप्त करने की है, लेकिन हम समय के अभाव या अन्य विभिन्न कारणों से साधन-भजन, प्रार्थना नहीं कर पा रहे हैं, तो क्या हमारे लिये भी कोई उपाय है? जिनके पास समय का अभाव है, उनके लिए उपाय बतलाते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि ईश्वर को आम-मुखत्यारी दे दो अर्थात् ईश्वर को सम्पूर्ण समर्पण कर दो या ईश्वर के शरणागत हो जाओ।

श्रीरामकृष्ण – ''अच्छा, उन्हें (ईश्वर को) आम-मुखत्यारी दे दो। अच्छे आदमी पर अगर कोई भार देता है, तो क्या वह आदमी कभी उसका अहित करता है? उन्हें हृदय से सब भार देकर तुम निश्चिन्त होकर बैठे रहो। उन्होंने जो काम करने के लिए दिया है, तुम वही करते जाओ।[१७]

इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण बिल्ली के बच्चे का सुन्दर दृष्टान्त देते हुए कहते हैं – ''बिल्ली के बच्चों में कपटयुक्त बुद्धि नहीं है। वह मीऊँ-मीऊँ करके माँ को पुकारना भर जानता है। माँ अगर खण्डहर में रखती है, तो देखो, वहीं पड़ा रहता है। बस 'मीऊँ' करके पुकारता भर है। माँ जब उसे गृहस्थ के बिस्तरे पर रखती है, तब भी उसका वही भाव है। 'मीऊँ' कहकर माँ को पुकारता है।''[१८]

गोस्पेल (Gospel) शब्द का पाँचवाँ अक्षर (E) है। E = Earnestness for God Realization. अर्थात् (ईश्वर दर्शन के लिये व्याकुलता)

श्रीरामकृष्ण को माँ काली का प्रथम दर्शन उनकी व्याकुलता से हुआ था। श्रीरामकृष्ण ईश्वर-दर्शन प्राप्त करने के लिये साधक को इस व्याकुलता रूपी साधना को करने का उपदेश देते हैं। ठाकुर इस व्याकुलता पर बहुत जोर देते हुए कहते हैं – ''व्याकुलता हुई कि मानो आकाश में सुबह की ललाई छा गयी। शीघ्र ही सूर्य भगवान निकलते हैं, व्याकुलता के बाद ही भगवद्‌दर्शन होते हैं।''[१९]

श्रीरामकृष्ण व्याकुलता का उदाहरण देते हुए कहते हैं – खूब व्याकुल होकर रोने से उनके दर्शन होते हैं। स्त्री या लड़के के लिये लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, रुपये के लिये रोते हुए आँखें लाल कर लेते हैं, पर ईश्वर के लिये कोई कब रोता है? ईश्वर को व्याकुल होकर पुकारना चाहिए।

ईश्वर को किस प्रकार प्रेम करने से हमें उनका दर्शन होगा, इसे समझाने के लिए श्रीरामकृष्ण तीन प्रकार का दृष्टान्त देते हैं – ''विषय पर विषयी की, पुत्र पर माता की और पति पर सती की, ये यह तीन प्रकार की चाह एकत्रित होकर जब ईश्वर की ओर मुड़ती है, तभी ईश्वर मिलते हैं।[२०]

श्रीरामकृष्ण ने अपने उपदेशों में व्याकुलता को बहुत ही महत्त्व दिया है। वे कहते हैं – ''अच्छा, ये लोग इतना जप करते हैं, इतना तीर्थ करते हैं, फिर भी इनकी प्रगति क्यों नहीं होती? मानो अठारह मास का इनका एक वर्ष होता है।'' उन्होंने हरीश से कहा, ''यदि व्याकुलता न रहे, तो फिर वाराणसी जाने की क्या आवश्यकता? व्याकुलता रहने पर यहीं पर वाराणसी है।'' ''इतना तीर्थ, इतना जप करते हैं, फिर भी कुछ क्यों नहीं होता? व्याकुलता नहीं है। व्याकुल होकर उन्हें पुकारने पर वे दर्शन देते हैं।''[२१]

कैसी व्याकुलता होने पर ईश्वर-प्राप्ति होती है, इसे स्पष्ट करने के लिये गुरु-शिष्य का एक उदाहरण देते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ''ईश्वर के दर्शन के लिये जब प्राण डूबते-उतरते रहते हैं, तब वह व्याकुलता होती है। गुरु ने शिष्य से कहा, आओ, तुम्हें दिखा दें, कैसे व्याकुल होने पर वे मिलते हैं। इतना कहकर वे शिष्य को एक तालाब के किनारे ले गये। वहाँ उसे पानी में डुबाकर ऊपर से दबा रखा। थोड़ी देर बाद शिष्य को निकालकर उन्होंने पूछा, कहो, तुम्हारा जी कैसा हो रहा था? उसने कहा, 'मुझे तो ऐसा लग रहा था, मानो मेरे प्राण निकल रहे हों। एक बार साँस लेने के लिये छटपटा रहा था।''[२२]

गोस्पेल (Gospel) शब्द का छठा अक्षर एल (L) है। L = Lust and Gold is Maya. Renounce lust and Gold. अर्थात् (कामिनी-कांचन माया है, कामिनी-कांचन का त्याग करो।) श्रीरामकृष्ण के उपदेशों में से एक सबसे प्रमुख उपदेश है – कामिनी-कांचन का त्याग। धर्म-पथ पर त्याग

की आवश्यकता है। इस पर जोर देते हुए रामकृष्ण ने क[२] (क स्क्वायर अर्थात् = कामिनी-कांचन) का त्याग करने पर अत्यधिक बल दिया है। श्रीरामकृष्ण अपने उपदेशों में बारम्बार इन दो को त्याग करने की शिक्षा देते हैं। किसका त्याग करें? किन वस्तुओं या व्यक्तियों का त्याग करें? इस प्रश्न का उत्तर श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्र के बीच ७ अप्रैल, १८८३ को बलराम बाबू के घर में हुए वार्तालाप से प्राप्त होता है –

नरेन्द्र (हँसते हुए) – इसने (भवनाथ ने) पान और मछली खाना छोड़ दिया है।

श्रीरामकृष्ण (भवनाथ से हँसते हुए) – क्यों रे? पान और मछली में क्या रखा है? इससे कुछ नहीं होता। कामिनी-कांचन का त्याग ही त्याग है।[२३]

एक अन्य दिन नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) ने श्रीरामकृष्ण से कहा कि त्याग करने की बात चलाने से कोई-कोई मुझसे नाराज हो जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण – (धीमे स्वर से) – त्याग आवश्यक है। श्रीरामकृष्ण अपने शरीर के अंगों को दिखलाकर कह रहे हैं – ''एक वस्तु के ऊपर अगर दूसरी वस्तु हो, तो एक को बिना हटाये दूसरी वस्तु कैसे मिल सकती है?''

श्रीरामकृष्ण – (नरेन्द्र से, धीमें स्वर में) – ईश्वरमय देखते रहने पर क्या फिर कोई दूसरी चीज दिखलायी पड़ सकती है?[२४]

श्रीरामकृष्ण कामिनी-त्याग का उपदेश देते हुए कहते हैं – ''अरे साधु सावधान! एक-आध बार जाना, बस। अधिक मत जाना, नहीं तो गिर पड़ेगा! कामिनी और कांचन ही माया है। साधु को स्त्रियों से बहुत दूर रहना चाहिए। वहाँ सब डूब जाते हैं। वहाँ ब्रह्मा और विष्णु तक लोटपोट हो जाते हैं।''[२५]

श्रीरामकृष्ण कांचन का त्याग करने का उपदेश देते हुए कहते हैं – ''रुपया भी संन्यासी के लिए विषवत् है। रुपये के पास रहने से ही चिन्ताएँ, अहंकार, देह-सुख की चेष्टा, क्रोध आदि सब आ जाते हैं। रजोगुण की वृद्धि होती है। रजोगुण के रहने से ही तमोगुण होता है। इसलिए संन्यासी कांचन का स्पर्श नहीं करते। कामिनी-कांचन ईश्वर को भुला देते हैं।

''तुम्हें यह समझना चाहिए कि रुपये से दाल-रोटी मिलती है, पहनने के लिये वस्त्र मिलता है, रहने की जगह मिलती है, श्रीठाकुर जी की सेवा होती है और साधुओं तथा भक्तों की सेवा होती है।

''धन-संचय की चेष्टा मिथ्या है। मधुमक्खी बड़े कष्ट से छत्ता तैयार करती है और कोई दूसरा आकर उसे तोड़ ले जाता है।''[२६]

इस प्रकार हमें Gospel of Sri Ramakrishna के Gospel शब्द के प्रत्येक छ: अक्षरों पर एक भिन्न प्रकार से विचार करने पर श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का सार प्राप्त होता है।

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत आधुनिक मानव को दिव्य आलोक प्रदायक ग्रन्थ है। इसमें श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न विषयों पर विभिन्न लोगों को माध्यम बनाकर युगोपयोगी उपदेश दिया है। इनका जीवन में आचरण कर हम ईश्वर-दर्शन कर सकते हैं। ○○○ **(समाप्त)**

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१२.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, पृ. ३५६ **१३.** वही, ३५६ **१४.** वही, ३५६ **१५.** वही, २७ **१६.** वही, ८६६ **१७.** वही, ७२९ **१८.** वही, ७२९ **१९.** वही, ९-१० **२०.** वही, ९-१० **२१.** वही, ३२७ **२२.** वही, ५७२ **२३.** वही, १७२ **२४.** वही, ११३६ **२५.** वही, १५७ **२६.** वही, १०४८.

पृष्ठ १२८ का शेष भाग

दिया गया था और उसे बाबरी मस्जिद ढाँचे का प्रतिरूप दे दिया गया था। सदियों की प्रतीक्षा के बाद राम भगवान की स्थापना के साथ एक अँधेरे युग का समापन हुआ और एक नए युग का सूत्रपात हो गया। २२ जनवरी, २०२४ का दिवस इतिहास के पृष्ठों में स्वर्ण-अक्षरों में अंकित हो गया। भगवान श्रीराम की बालक राम रूप में नवनिर्मित मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा हो गई। असंख्य रामभक्तों का तप-त्याग, बलिदान, सेवा एवं भक्ति का भाव इसके साथ फलित हो उठा। यह सुअवसर राष्ट्रीय चेतना के जागरण का महापर्व जैसा रहा। हर घर में दिए जले और हर मन-मन्दिर इनके आलोक से प्रकाशित हुआ।

श्रीराम हमारे आराध्य के रूप में हृदय में सदैव विद्यमान हैं। उनका चरित्र आदर्श और मर्यादा के सांगोपांग निरूपण से ओतप्रोत है। आवश्यकता है कि उसे वर्तमान समय में भी आत्मसात् किया जाए। श्रीराम के उदात्त चरित्र की नैतिक मूल्यपरक शिक्षा बच्चों को बाल्यकाल से ही प्रदान की जाए। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (८६)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

''स्वामी अशेषानन्द ने कहा, 'रासबिहादी दा (स्वामी अरूपानन्द) और मैं आज बातें कर रहे थे। माँ काली का एक चित्र श्रीरामकृष्ण देव के नीचे रखा हुआ था। वह माला जो पहले ठाकुर को चढ़ाई गयी थी, उसी माला को बाद में माँ काली को पहनाया गया। सार्वजनिक दृष्टि से देखने पर शायद यह अच्छा न लगे। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में एक घटना का वर्णन है – एक संन्यासी पंचवटी में आये थे तथा एक शालिग्राम और एक शिवलिंग को अपने गुरु के चरण-पादुका के नीचे रखकर कहा कि वे सभी समान हैं। ठाकुर ने यह देखकर कहा, ''यदि इतनी अभेद बुद्धि है, तो आप पूजा-अर्चना क्यों करते हैं?'' श्रीरामकृष्ण माँ काली को छोड़कर कुछ भी नहीं जानते थे, माँ काली के प्रसाद को छोड़कर कुछ नहीं खाते थे। (माके हृद मज्झारे ध्यान कोरीले हृदपद्म करो आलो) माँ का भजन गाते-गाते वे समाधि में चले जाते थे। क्या यह सही है कि माँ काली को वह माला पहनायी जायी, जो पहले ही ठाकुर को पहनायी जा चुकी है?

स्वामी सारदानन्द, 'हमें जिस व्यक्ति से प्रकाश प्राप्त होता है, वहीं व्यक्ति हमारे लिए महान होता है। हमने यदि ठाकुर को नहीं देखा होता, तो क्या हम तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं को मानते! ठाकुर ने स्वीकार किया है, इसीलिए हमलोग भी स्वीकार करते हैं। नहीं तो किसने काली, कृष्ण या दुर्गा को देखा था? क्या तुमने माँ काली के लिए अपना घर-द्वार, परिवार का त्याग किया है? तुमने तो केवल श्रीमाँ सारदा देवी को देखकर ही संसार-त्याग किया है। यदि स्वामी विवेकानन्द श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में नहीं आते, तो अधिक से अधिक वे एक बैरिस्टर हो गये होते। मैं एक बड़ा चिकित्सक होता, इससे अधिक और क्या। हमलोगों ने ब्राह्म समाज में नाम लिखवाकर यज्ञोपवीत का त्याग कर दिया था। श्रीरामकृष्ण और माँ काली क्या भिन्न हैं? श्यामपुकुर (कालीपूजा के दिन) में उन्होंने माँ काली का रूप धारण करके वरदान दिया। यहाँ तक कि हमने उनको अपने मस्तक पर पुष्प चढ़ाते हुए देखा है। उन्होंने स्वयं को माँ काली समझकर न जाने कितनी बार पूजा की है। वे अपने स्वयं के चित्र को पुष्प चढ़ाते और कहते ''भविष्य में इस चित्र की घर-घर में पूजा होगी।'' उनको केवल अवतार कहना ही पर्याप्त नहीं है। श्रीरामकृष्ण वे हैं, जिनसे अवतार प्रकट होते हैं। ठाकुर ने अपना चित्र दिखाते हुए योगीन-माँ से कहा था, ''तुम्हारा इष्ट इसके भीतर है। इसकी पूजा करने से ही उनकी पूजा होगी।'' ठाकुर ने स्वयं कहा है, इसीलिए हम विश्वास करते हैं, अन्यथा हमारे जैसे लोग या योगीन-माँ बहुत कट्टर थे! श्रीमाँ ने इस घटना (ठाकुर की अपने चित्र की पूजा करते हुए) को देखा था, किन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।

स्वामी अरूपानन्द – 'श्रीरामकृष्ण ने भाव के समय ऐसा व्यवहार किया था कि माँ काली के साथ उनका अभेद स्वरूप है। लेकिन अन्य समय तो वे माँ काली के प्रति अत्यन्त श्रद्धा से पूजा किया करते थे।'

स्वामी सारदानन्द – ठाकुर न जाने कब, किस भाव में रहते थे! हमलोग समझते थे कि वे सामान्य मन:स्थिति में हैं, किन्तु हम यह कैसे जान सकते थे कि वे उस समय भी दिव्य-भाव में नहीं थे? यही कारण है कि स्वामीजी ने कहा है कि ब्रह्मज्ञान को बौद्धिक रूप से समझा जा सकता

है, किन्तु अनन्त भगवान का मानव रूप में अवतार लेना मानवीय समझ से परे है।'

विलास महाराज – शास्त्र कहते हैं कि यदि शिव अप्रसन्न हो जाये, तो गुरु की शरण में जाया जा सकता है। लेकिन यदि गुरु अप्रसन्न हो जाये, तो कोई बचा नहीं सकता। गुरु के समक्ष अन्य देवी-देवता छोटे हो जाते हैं। उनका अधिक महत्त्व नहीं रहता। शंकराचार्य तथा अन्यान्य वेदान्ती मूर्ति-पूजा के विरोधी हैं, किन्तु सभी गुरु-पूजा करते हैं।

आशु बाबू – मनुष्य को अपने गुरु की पूजा सहस्रार में करनी होती है, किन्तु इष्ट की पूजा हृदय में करनी होती है। बताओ महान कौन है?

स्वामी अरूपानन्द – जब किसी के अन्दर में सभी प्रकार के भेदभाव नष्ट हो जाते हैं, केवल वही जानता है कि गुरु और इष्ट में कोई भेद नहीं है। किन्तु किसने उस अवस्था को प्राप्त किया है?'

स्वामी सारदानन्द – जब ठाकुर के पास आ गये हो, तब तुम्हारी या हमारी भेदबुद्धि कितने दिन रह पायेगी। हमलोग उस अवस्था को एक न एक दिन अवश्य पायेंगे। भेदबुद्धि अधिक दिन तक नहीं रह पायेगी!

'हमलोग (संन्यासी शिष्य) ठाकुर के पास से सुनकर जप-ध्यान तथा होम इत्यादि किया करते थे। रामदत्त बाबू तथा अन्य लोग कहा करते थे कि जब हमने ठाकुर को बकलमा दे दिया है, तो अन्य किसी प्रकार के साधन-भजन की आवश्यकता नहीं है। हमलोग जो कर रहे हैं, वह ठाकुर के भाव के अनुरूप नहीं है। जब यह ठाकुर को बताया गया, तो ठाकुर ने कहा कि मैं क्या जानता हूँ, वे लोग अपनी इच्छानुसार कर रहे हैं?' इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने संन्यासी शिष्यों तथा गृहस्थ शिष्यों को पृथक् रखा था।

'बलराम बोस ने बारह वर्ष तक बार्ली खाकर जीवन बिताया था। उनको भयानक डिस्पेप्सिया था। हरिवल्लभ बोस तथा उनकी पत्नी को भी अपच की समस्या थी। बलराम बाबू रुपया खर्च करने में बहुत उदार थे। किसी भी व्यक्ति के बंगाल से पुरीधाम जाने पर बलराम बाबू के निवास शशी निकेतन में रहने की व्यवस्था थी। वे व्यक्तियों को बहुत उदार भाव से भोजन कराते थे। वे कहते थे, ''शायद मैंने पूर्वजन्म में किसी को खाने को नहीं दिया, इसीलिए इस जन्म में मैं कुछ भी हजम नहीं कर पा रहा हूँ। इस जन्म को मैं किसी को भी खाने से वंचित नहीं करूँगा।'' पुरी में जितने मन्दिर थे, उन सभी में देव-सेवा के लिए रुपया दिया करते थे। उनकी श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा के प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति थी। जब श्रीमाँ शशी निकेतन में थीं, तब उन्होंने उनकी अतीव सेवा की थी।

'बलराम बाबू रुपया के विषय में बहुत हिसाबी थे। कोई विलासिता नहीं थी। ठाकुर के सम्बन्ध में वे मुक्तहस्त थे, किन्तु अपने लिए कंजूस थे। वे छोटे पलंग पर सोते थे।

'स्वामी विवेकानन्द जी का भजन सुनकर मेरे जीवन में दो बार देहबोध विस्मृत हो गया था। एकबार काशीपुर में, उस समय अनुभव हुआ कि मेरा शरीर नहीं है; ऐसा लगा कि जगत् कहीं विलीन हो गया है। दूसरी बार वराहनगर में, उस समय ऐसा बोध हुआ कि स्वामीजी तथा अन्य वस्तुएँ कल्पना से निर्मित हुई हैं, उनका कोई भी अस्तित्व नहीं है।

'माया के सम्बन्ध में विवेकचूडामणि में कहा गया है कि माया सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं, भिन्न नहीं तथा अभिन्न नहीं। वह अनिर्वचनीय ब्रह्म के समान सत्य भी नहीं है। पुन: कहा जाता है कि ब्रह्म में ही माया है, जैसे सर्प के मुँह में विष। जैसे बैठा हुआ सर्प और चलता हुआ सर्प; जब कुण्डली मार कर बैठा है, तब निर्गुण, निष्क्रिय अवस्था, जब चलता है तब माया या शक्ति का कार्य है।

'एक समय काशीपुर उद्यानवाटी में बहुत-से सूखी पत्तियाँ और लकड़ियाँ जमा हो गयी थी। एक रात्रि स्वामीजी ने मुझसे कहा, ''चलो, हम अपनी सारी वासनाओं को आहुति दे दें।'' तब उन पत्तियों तथा लकड़ियों को एकत्रित करके उसमें आग लगायी गयी और मानसिक रूप से हम अपनी-अपनी सब वासनाओं की आहुति देने लगे। होम के समय भी ऐसा सोचना चाहिए। उस समय स्वामीजी होम के महत्त्व को उतना समझते नहीं थे।

'उसके अगले दिन स्वामीजी कानून की परीक्षा का शुल्क जमा करने कोलकाता गये। उस समय उनके मन में पूर्व रात्रि में किए गए कार्य का स्मरण हुआ, तब वे अपनेआप से पूछने लगे ''मैं यह क्या कर रहा हूँ?'' शुल्क न जमा करके वे खाली पैर चलते हुए काशीपुर वापस आ गये। वापस आते समय, उन्होंने गिरीशचन्द्र घोष से कहा, ''मेरे परिवारवाले को देखना, मैं जाता हूँ।'' जब अतुल घोष ने

शेष भाग पृष्ठ १४० पर

परम लक्ष्य की ओर

स्वामी गोकुलानन्द

परम लक्ष्य क्या है? यह ईश्वर की अनुभूति और अपनी वास्तविक प्रकृति की अनुभूति करना है। प्रश्न उठता है कि इस परम लक्ष्य की ओर अग्रसर कौन होता है? इसका उत्तर है कि सर्वप्रथम तो वह व्यक्ति परम लक्ष्य की ओर अग्रसर होगा, जो अन्तरात्मा की पुकार सुनता है। द्वितीय वह व्यक्ति जो अन्तर्द्वन्द्व की अनुभूति करता है। परम लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की अनुभूति तब तक सम्भव नहीं हो सकती, जब तक हमें अन्तर्द्वन्द्वों का अनुभव नहीं होता, एक प्रकार की रस्साकसी या यूँ कहें कि जब तक हमारी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों अर्थात् उच्च जीवन जीने के लिये प्रेरित करनेवाली और पतन की ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियों से संघर्ष नहीं होता।

इस संसार में विभिन्न प्रकार के लोग रहते है। इनमें कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो जीवन के केवल भौतिकवादी मार्ग में ही विश्वास करते हैं। वे परम लक्ष्य की ओर ध्यान नहीं देते और इसलिए उनमें किसी प्रकार का कोई द्वंद्व भी नहीं होता। वे जब तक अपने अन्दर अन्तर्द्वन्द्व की अनुभूति करना आरम्भ नहीं करते, तब तक उनके लिए कोई आशा नहीं है। आत्मा उस परम तत्त्व को समझना चाहती है, परन्तु हमारी शारीरिक रचना ही इस प्रकार हुई है कि हमारी इन्द्रियाँ जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आती हैं, उनके आकर्षणमात्र से ही हमारा अधोपतन हो जाता है। यह ठीक ही कहा गया है, ''मन तो इच्छुक है, परन्तु तन बाधक है।''

मानव जन्म दुर्लभ है। यद्यपि हमें भी यह सुअवसर प्राप्त हुआ है, सर्वप्रथम हमारे अन्दर मुक्त होने की वास्तविक इच्छा होनी चाहिए और उसके बाद ईश्वर की अनुभूति का मार्ग प्रदर्शित करनेवाले किसी सुयोग्य गुरु से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होना चाहिए। इन सबकी उपलब्धि के बाद भी इनका वास्तविक रूप से लाभ उठाने की उत्सुकता हममे नहीं होती है। क्योंकि हम कठिनाईयों का सामना नहीं करना चाहते। तथ्य यह है कि आत्माभिव्यक्ति का मूल्य चुकाने के लिए विरले व्यक्ति ही तैयार होते हैं। ईश्वरीय अनुभूति के लिये अपने सम्पूर्ण मन को ईश्वर को समर्पित करना होता है। मन को विभिन्न खण्डों में विभाजित कर ईश्वर का अनुभव नहीं किया जा सकता। अपने मन के कुछ भाग को हम सांसारिक वस्तुओं के उपभोग और अवशिष्ट अंश को ईश्वर के प्रति नहीं लगा सकते। ईश्वर तो अकेले ही हृदय में राज करना चाहते हैं। अत: यदि हम उसकी अनुभूति करना चाहते हैं, तो हमें चाहिए कि हम अपने मन को पूर्ण रूप से उस परमात्मा को समर्पित करें। प्रात:काल और सायंकाल कुछ मिनटों के लिए ईश्वर को स्मरण करने मात्र को आध्यात्मिक जीवन नहीं कहा जा सकता। ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त करने का निरन्तर अभ्यास किए बिना और अपने अस्तित्व के प्रत्येक क्षण में ईश्वर की उपस्थिति अनुभव किए बिना आध्यात्मिक विकास सम्भव नहीं है।

जब तक मेज की चारों पैर सही स्थिति में नहीं होगें, मेज तिरछी रहेगी। वह चौथा पैर मुमुक्षुत्व है। अत: कहा है – किसी की साधना तभी सफल एवं फलदायी होती है, जब उसके मन में मोक्ष-प्राप्ति की वास्तविक इच्छा हो। अत: यदि हम आध्यात्मिक जीवन में उन्नति नहीं करते, तो हमें अन्त:करण से उत्तर मिलेगा, ''क्या मैं अपने आध्यात्मिक जीवन के विषय में गम्भीर हूँ? क्या मैं सचमुच मुक्ति की वास्तविक इच्छा रखता हूँ?'' स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक प्रवचन में कहा है, ''साधनों की चिन्ता करो, साध्य स्वयं अपनी चिन्ता करेगा।''

साध्य क्या है? साध्य आध्यात्मिक पूर्णता अर्थात् परम लक्ष्य की प्राप्ति है। साधना क्या है? वह विवेक, वैराग्य, षटसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व है। ये अनुभूत सत्य हैं और जो इनका अभ्यास करते हैं, वे लक्ष्य तक पहुँचेगे। इसलिए हम कह सकते हैं कि यदि हमारे अन्दर सच्चा वैराग्य और मुक्ति की इच्छा है, तो परम लक्ष्य की ओर हमारी यात्रा अवश्य सफल होगी।

अत: आध्यात्मिक अनावरण और आध्यात्मिक विकास उसी हृदय में उत्पन्न होता है, जिसे वैराग्य के जल से सींचा जाता है। फिर हमें उस पर हल भी चलाना है। मान लीजिए कि हमें खेती के लिए किसी खेत में पानी देना है, तो उसमें केवल पानी देना ही पर्याप्त नहीं। हमें हर प्रकार से, किसी प्रकार दोहरी चाल से उसे बचाना है। इस दोहरी चाल का

क्या अर्थ है? परमेश्वर ने हमारा निर्माण किया है कि हमारी इन्द्रियों की प्रवृत्ति सांसारिक विषय वस्तुओं को प्राप्त करने या उनका आनन्द लेने की होती है। किन्तु कुछ ऐसे भी प्रबुद्ध व्यक्ति होते हैं, जो भले-बुरे का अन्तर समझते हैं, जागरूक हैं और अपने अन्त:करण में यह अनुभव करते हैं कि यदि वे अपने आपको बाह्य जगत के विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों के प्रति आकर्षित होने देंगे, तो वे इस जीवन में परम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि इन्द्रियों में हमें अन्तर्जगत से बाह्य जगत की ओर खींचने की प्रवृत्ति होती है। सांसारिक प्रलोभनों की तृष्णा में हम यह भूल जाते हैं कि यह संसार केवल प्रतीतियों का संसार है, जो सत्य नहीं है। यदि हम सांसारिक प्रलोभनों के घेरे में पड़ जायेंगे और साथ ही साथ आध्यात्मिक पथ पर भी चलना चाहेंगे, तो हम त्रुटि करेंगे, जिसे दोहरी चाल कह सकते हैं। यदि हम परम लक्ष्य की प्राप्ति के पथ के प्रति गम्भीर हैं, तो हमें एक ही बार चयन करना होगा। हमारा चिन्तन इस प्रकार का होना चाहिए – 'हमने इस संसार का असंख्य जन्मों में आनन्द लिया है, इस जीवन में हम जानते हैं कि इन्द्रियों का यह आनन्द क्या है। क्या हमें पुन: इस कपटी संसार से धोखा खाना है?' यदि हम पुन: धोखा नहीं खाने चाहते हैं, तो हमें इसके बारे में दृढ़ निश्चय करना है और तदनुसार यह जीवन जीना है।

कई बार हमारे मन की अवचेतन परत से कुछ कलुषित विचार एवं कलुषित भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। यदि हमारे मन की अर्धचेतन परत में ऐसे अप्रिय विचार उत्पन्न हों, तो हमें अपने अन्दर विद्यमान इष्टदेव से कहना चाहिए – 'हे प्रभो ! मैं असमर्थ हूँ। ये अप्रिय विचार, कलुषित भावनाएँ मेरे विचार नहीं है। वे सब आपके हैं। जो भी मेरे पास है, यह सब आपका ही दिया हुआ है। अत: मैं असहाय हूँ ।'

इस सन्दर्भ में भगवान श्रीकृष्ण एवं अत्यन्त विषैला सर्प कालिया नाग की कहानी स्मरणीय है। भागवत में यह कहा गया है कि एक अत्यन्त विषैला कालिया नाग यमुना नदी के जल को विषैला बना कर विध्वंश मचाया हुआ था। भगवान श्रीकृष्ण के भक्तों ने श्रीकृष्ण को इस दैत्य को मारने का अनुनय किया।

श्रीकृष्ण सदैव दयालु हैं। उन्होंने अपने प्रिय भक्तों की पुकार को सुना तथा उनकी रक्षा के लिए आ गए। वे नदी में कूद गए और निरन्तर साँप के फनों पर तब तक नाचते रहे, जब तक उसने अपना सारा विष न उगल दिया। इस कालिया ने अपने पूर्व जन्म में अवश्य ही पुण्य कार्य किए होंगे। अन्यथा वह भगवान के अवतार का स्पर्श कैसे प्राप्त कर सकता था? अब गहन पीड़ा के समय भी वह ईश्वर के समक्ष था तथा अपने ईश्वर के पवित्र चरणों में गिर गया और प्रार्थना की, 'हे प्रभो! मैं न केवल स्वयं को आपके चरण-कमलों में समर्पित कर रहा हूँ, बल्कि मैं आपको कुछ और भी दे रहा हूँ। आपके भक्त आपको विभिन्न प्रकार की सामग्री भेंट करते हैं। मेरे पास आपको समर्पित करने के लिये विष के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, क्योंकि इस विश्व के रचयिता आपने ही मुझे यह विष दिया है। मैं इसे ही आपके चरण-कमलों में समर्पित कर रहा हूँ।'' उसे बड़ा दुख हुआ कि उसके पास समर्पित करने के लिए इससे अच्छा कुछ भी नहीं है। श्रीकृष्ण एवं कालिया की इस कहानी का आध्यात्मिक महत्त्व यह है कि हमारे अन्दर अच्छी एवं बुरी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। हमें ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिए। अच्छी बुरी हर चीज को उन्हें समर्पित कर देना चाहिए। तभी हम अपने परम लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। ○○○

पृष्ठ १३८ का शेष भाग

बरामदा से स्वामीजी को खाली पैर चलते हुए देखा, तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्या हुआ। स्वामीजी ने कहा, ''मेरा क्षुद्र अहं मर गया।'' स्वामीजी ने मास्टर महाशय से कुछ सौ रुपये उधार लिए तथा उसे अपनी माँ को देते हुए कहा, ''कुछ महीनों तक मुझे परेशान मत करना।'' उसके बाद वे ठाकुर के पास काशीपुर उद्यानवाटी आये तथा निर्विकल्प समाधि के लिए प्रार्थना की।

''आरती के महत्त्व के सम्बन्ध में शरत् महाराज ने कहा, 'पंचभूत है पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश। इन पंचभूत के विकार से ही शरीर तथा मन का निर्माण हुआ है। प्रदीप हुआ अग्नि का, शंख जल का, वस्त्र आकाश का, पुष्प पृथ्वी का तथा व्यंजन या चामर वायु का प्रतीक है। देह और मन से भगवान की सेवा करना ही है आरती का वास्तविक अर्थ। भक्त लोग इन सब बातों पर विचार नहीं करते। वे सोचते हैं कि इन सभी से वे भगवान की सेवा कर रहे हैं।' '' **(क्रमश:)**

पुस्तक समीक्षा

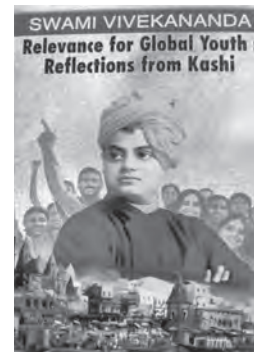

पुस्तक – Swami Vivekananda : Relevance for Global Youth – Reflections from Kashi

लेखिका – डॉ. अलका रानी गुप्ता

प्रकाशक – राधा पब्लिकेशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

पृष्ठ – २२२, मूल्य – ८५०/-

समकालीन भारतीय बौद्धिक विमर्श में स्वामी विवेकानन्द पर उपलब्ध साहित्य प्राय: दो प्रवृत्तियों के बीच विभाजित दिखाई देता है। एक ओर भक्तिपरक और पुनरुक्तिपूर्ण आख्यान, तो दूसरी ओर संकीर्ण ऐतिहासिक विवरण। इन दोनों सीमाओं को लांघते हुए डॉ. अलका रानी गुप्ता की यह कृति स्वामी विवेकानन्द को एक समय-संवादी विचारक के रूप में पुन: स्थापित करने का एक गम्भीर और शोधोन्मुख अकादमिक प्रयास प्रस्तुत करती है।

पुस्तक का केन्द्रीय भाव यह है कि विवेकानन्द के विचार मात्र औपनिवेशिक भारत की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया नहीं थे, बल्कि उनमें समकालीन वैश्विक युवा-समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संकटों को समझने तथा सम्बोधित करने की अन्तर्निहित क्षमता है। इस सन्दर्भ में लेखिका 'काशी' को मात्र एक भौगोलिक या धार्मिक केन्द्र के रूप में नहीं, बल्कि विवेकानन्द की वैचारिक निर्मिति के एक सांस्कृतिक-सांकेतिक स्थल के रूप में विश्लेषित करती हैं। स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन में पाँच बार काशी-प्रवास किया। उनकी समावेशी दृष्टि, भारत-केन्द्रित राजनैतिक चेतना और आध्यात्मिक चिन्तन प्रत्येक काशी-वास में अधिक संश्लिष्ट और परिपक्व रूप में विकसित हुआ। स्वामी विवेकानन्द का बचपन का नाम 'वीरेश्वर' है, जो वीरेश्वर महादेव के नाम पर रखा गया, उनके काशी से गहरे और प्रतीकात्मक जुड़ाव को और अधिक सार्थक करता है। यह सांस्कृतिक-दार्शनिक सन्दर्भ पुस्तक को विशिष्ट सैद्धांतिक गहराई प्रदान करता है। यह पुस्तक तीन प्रमुख विमर्श-स्तरों पर है – (i) समकालीन युवाओं की सामाजिक एवं मानसिक चुनौतियाँ (ii) विवेकानन्द-दर्शन की निरन्तर प्रासंगिकता तथा (iii) काशी की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक भूमिका। इन तीनों स्तरों को आपस में जोड़ते हुए लेखिका विवेकानन्द को इतिहास की स्मृति-परिधि से निकालकर वर्तमान की बौद्धिक आवश्यकता में रूपान्तरित करती हैं।

डॉ. गुप्ता की अकादमिक पृष्ठभूमि, राजनीति विज्ञान में पीएचडी, यूजीसी जेआरएफ एवं एसआरएफ तथा भारतीय राजनीति, नैतिक मूल्यों और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर उनके पूर्ववर्ती शोध, इस कृति में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। विशेष रूप से काशी के युवाओं (१८–३५ आयु वर्ग) पर आधारित सर्वेक्षण तथा उसके सांख्यिकीय विश्लेषण पुस्तक को एक सुदृढ़ अनुभवजन्य आधार देते हैं, जो इसे सामान्य विवेकानन्द साहित्य से अलग स्थापित करता है।

नारी सशक्तिकरण, अद्वैत वेदान्त के माध्यम से मानव-एकता, तथा राष्ट्रसेवा को आध्यात्मिक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत करनेवाला विवेकानन्दीय दृष्टिकोण यहाँ आलोचनात्मक विवेचन के साथ उभरता है। लेखिका विवेकानन्द के विचारों को न तो आदर्शवादी महिमामंडन में रूपान्तरित करती हैं और न ही उन्हें समकालीन राजनीति के लिए सरलीकृत वैचारिक उपकरण बनाती हैं। यह सन्तुलन इस पुस्तक की प्रमुख बौद्धिक उपलब्धि है।

भाषा और प्रस्तुति अकादमिक अनुशासन का स्पष्ट पालन करती है। उद्धरणों का विवेकपूर्ण प्रयोग, सैद्धान्तिक स्पष्टता और शोध-सन्दर्भों की संगति पुस्तक को विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों, शोधार्थियों और गम्भीर पाठकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी बनाती है। यद्यपि कुछ अध्यायों में विवेकानन्दीय विचारों के दार्शनिक प्रतिपक्ष को और विस्तार दिया जा सकता था, तथापि यह सीमा पुस्तक की समग्र गुणवत्ता को प्रभावित नहीं करती।

निष्कर्षत: Swami Vivekananda: Relevance for Global Youth – Reflections from Kashi विवेकानन्द अध्ययन में एक महत्त्वपूर्ण अकादमिक योगदान के रूप में उभरती है। यह कृति इस तथ्य को रेखांकित करती है कि स्वामी विवेकानन्द केवल एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं, बल्कि समकालीन वैश्विक युवावर्ग हेतु एक बौद्धिक, वैचारिक संसाधन भी हैं।

साथ ही, यह पुस्तक डॉ. अलका आर. गुप्ता को विवेकानन्द अध्ययन और मूल्य-आधारित सामाजिक चिन्तन की एक सशक्त, प्रामाणिक और प्रभावी अकादमिक स्वर के रूप में स्थापित करती है। यह कृति राजनीति विज्ञान, दर्शन, सांस्कृतिक अध्ययन और युवा अध्ययन के शोधार्थियों के लिए विशेष रूप से अनुशंसनीय, संग्रहणीय है और ऐसी रचना हेतु लेखिका श्लाघनीय हैं।

समीक्षक – शशिकान्त सिंह, अधिवक्ता, लखनऊ (उ.प्र.)

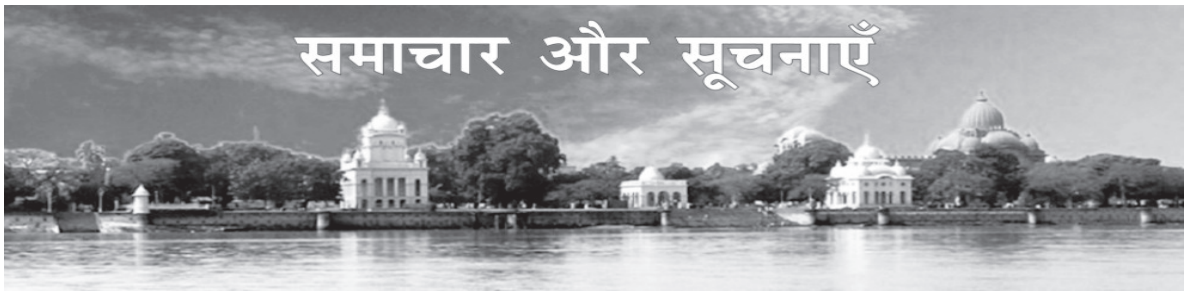

परम पूज्य परमाध्यक्ष महाराज स्वामी गौतमानन्द जी महाराज का छत्तीसगढ़ प्रवास

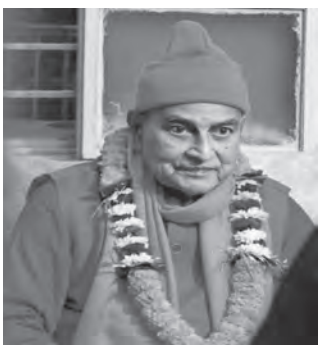

१८ से २३ दिसम्बर, २०२५ तक रामकृष्ण मठ और मिशन के परमाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज का छत्तीसगढ़ पदार्पण हुआ। पूज्य महाराज जी १८ नवम्बर को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में पधारे और १९ को रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर गये। वहाँ महाराज ने भवनों का उद्घाटन और दीक्षा प्रदान की। २३ दिसम्बर १.३० बजे महाराज जी रायपुर आश्रम आये। शाम ५.१५ बजे भक्तों का प्रणाम हुआ और उसी दिन शाम ७.३० बेलूड़ मठ हेतु प्रस्थान किये।

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद की वार्षिक सभा सम्पन्न हुई

८ और ९ नवम्बर, २०२५ को मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद की वार्षिक सभा श्रीश्रीरामकृष्ण आश्रम, पखानजोर, जगदलपुर, छत्तीसगढ़ में सम्पन्न हुई। ८ नवम्बर के कार्यक्रम का शुभारम्भ भावप्रचार परिषद के अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज के द्वारा ध्वजारोहण और स्वदेश मन्त्र के पाठ से हुआ। उसके बाद सभी संन्यासियों ने दीप-प्रज्वलन और मंचस्थ श्रीठाकुर, श्रीमाँ और श्रीस्वामीजी की प्रतिमा पर पुष्पार्पण किया। तत्पश्चात् स्वामी तन्यमयानन्द जी ने सबको संकल्प मन्त्र का पाठ कराया। तदनन्तर पिछली सभा का संक्षिप्त प्रतिवेदन पाठ हुआ। सभी आगत स्वशासी केन्द्रों के प्रतिनिधियों ने अपने आश्रम के छह माह के रिपोर्ट को पढ़ा। उसके बाद परिषद के अध्यक्ष स्वामी व्याप्तानन्द जी, उपाध्यक्ष स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, बेलूड़मठ के प्रतिनिधि स्वामी इष्टमयानन्द जी ने समस्याओं के समाधान और अन्य परामर्श हेतु सभा को सम्बोधित किया। ९ नवम्बर, २०२५ को भक्त-सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें संन्यासियों ने सभा को सम्बोधित किया। लगभग ९०० भक्तों ने भाग लिया।

रामकृष्ण-विवेकानन्द वेदान्त समिति, नर्मदापुरम् में १५ नवम्बर, २०२५ को श्रीसारदा शान्ति आश्रम में श्रीरामकृष्ण देव की विशेष पूजा-अर्चना, हवन और भजन हुए। १ से ५ बजे तक नारायण-सेवा हुई। १६ नवम्बर को कामगार कल्यान केन्द्र, एस.पी.एम. नर्मदापुरम् में भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें १२५ भक्तों नें भाग लिया। सम्मेलन को स्वामी नित्यज्ञानानन्द जी, स्वामी ज्ञानगम्यानन्द जी, स्वामी वीरेशानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी और श्री लक्ष्मीनारायण इन्दूरिया जी ने सम्बोधित किया। स्वामी दिव्येशानन्द जी भजन प्रस्तुत किये।

१७ नवम्बर को नर्मदा महाविद्यालय में एक युवा शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें लगभग २०० बच्चों ने भाग लिया। युवाओं को स्वामी नित्यज्ञानानन्द, स्वामी ज्ञानगम्यानन्द, स्वामी वीरेशानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने सम्बोधित किया। विवेकानन्द पुस्तकालय, नर्मदापुरम् में ३० गरीब मेधावी छात्रों को कुल रुपया १५०००/- की छात्रवृत्ति प्रदान की गयी।

१२ दिसम्बर, २०२५ को **विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर** में श्रीमाँ सारदा की जयन्ती मनाई गयी, जिसमें डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, डॉ. मनीषा दूबे और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने व्याख्यान दिये। स्वामी योगस्थानन्द जी ने अध्यक्षता की।

१८ दिसम्बर, २०२५ को में छत्तीसगढ़ के महान सन्त गुरुघासी दास की जयन्ती मनाई गई, जिसमें प्रो. बी.एल. सोनेकर, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने व्याख्यान दिये और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने अध्यक्षता की।